वैष्णवीय
विज्ञान
श्रीमद् रामहर्षणदासजी महाराज

वैष्णवीय
विज्ञान
श्रीमद् रामहर्षणदासजी महाराज

श्री वैष्णवीय विज्ञान

|| श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नम: ||

श्री वैष्णवीय विज्ञान

अनन्त श्री विभूषित श्री मद्रामानन्दीय द्वारा प्रतिष्ठापनाचार्य वर्य स्वामिपाद

श्रीमद् योगानन्दाचार्य

वंशावतंश निखिल सन्तवृन्द वन्दित पाद पद्माशेष शास्त्र पारङ्गत परमहंस परिव्राजकाचार्य सिद्ध पद प्रतिष्ठित जगदुद्धारक पण्डित प्रवर

श्रीमद् रामबल्लभा शरण महाभाग

चरणाश्रित अखिल वेद वेदाङ्ग निष्णात विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त प्रतिष्ठापनाचार्य पूज्य पाद

श्रीमद् अखिलेश्वरदास जी महाराज

चरणकमलचञ्चरीकेण प्रेममूर्ति पञ्चरसाचार्येण

श्रीमद् रामहर्षण दास

स्वामिनाप्रणीतं

- न्यौछावर : [illegible] रु. मात्र

- चतुर्थ संस्करण : २००९

- प्रकाशक
  श्री राम हर्षण सेवा संस्थान
  परिक्रमा मार्ग, नया घाट
  श्री अयोध्या जी
  (उ. प्र.)

- मुद्रक :
  शोभा प्रिंटिंग प्रेस
  न्यू बस स्टैण्ड के पास, नदीपार
  कटनी (म. प्र.)
  दूरभाष : ०७६२२-४०८३६८

अनुक्रमणिका

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय		पृष्ठ

विषय पृष्ठ

---: ० :---

पंच रसाचार्य स्वामी श्रीमद् रामहर्षण दास जी महाराज
श्री अवध धाम

नम्र निवेदन

मनीषियों ने सम्पूर्ण श्रुतियों शास्त्रों और पुराणों के सागर का मन्थन करके वैष्णव धर्म रूपी सर्वश्रेष्ठ, सुन्दर, सुरम्य रत्न को निकाला है, जिसके वैशिष्ट्य, वैलक्षण्य एवं अनुपमेयत्व का दिग्दर्शन कराने के लिए स्वयं ईश पद वाच्य श्रीमान शंकर भगवान परम वैष्णव बन गये (वैष्णवानां यथा शम्भु:)। ब्रह्मा, नारद, सनक, सनन्दन, शेष, पराशर, व्यास, शुक, शौनक, शाण्डिल्य, गर्गाचार्यादि ऋषि तथा पृथु, अम्बरीष, रुक्माङ्गद, पुंडरीक, प्रह्लाद, विभीषण, हनुमान, राजर्षि एवं मनुष्येतर जातियों ने भी शिरसा ग्रहण किया। इस धर्म की व्यापकता किसी आस्तिक से अविदित नहीं है। देव, दैत्य, नर, नाग, पशु, पक्षी कुलोत्पन्न कई लोगों ने समवेत स्वर से भागवत् धर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और अपने को उक्त धर्म में लगाकर परम भागवत् पद पाने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

वैष्णवता की सुधा सबको समान रूप से पिलाकर सबको अमृत बनाने एवं अमृतानुभव कराने के लिये स्वयं श्री जी, शंकर जी, ब्रह्मा जी तथा सनक जी ने वैष्णव धर्म के अनुयायी और प्रवर्तकाचार्य बनकर वैष्णवीय विज्ञान का प्रचार और प्रसार किया। तदोपरान्त अनेकानेक वैष्णवाचार्यों से वैष्णवता की बेलि विवर्धित करने का कार्य सम्पादन होता चला आया है। बौद्ध धर्म के आक्रमण से वैष्णवता की न्यूनता न सहकर प्रभु प्रेरणा से भगवत् स्वरूप श्री रामानुजाचार्य, श्री रामानन्दाचार्य, श्री माध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य और श्री वैष्णवाचार्य जैसे महापुरुषों ने अवतार लेकर पुन: सूखती हुई वैष्णव धर्म की लता को अपने अमृतोपम उपदेश से सींच कर लहलहाया। उक्त आचार्यों की अनुकम्पा एवं प्रताप से आज इस घोर कली में भी अधिक लोग वैष्णव धर्म के अनुयायी हैं और रहेंगे क्योंकि यह धर्म सनातन है।

विष्णु, वैष्णव, वैष्णव-धाम और वैष्णवता कहने मात्र को चार हैं किन्तु सभी विष्णु (व्यापक ब्रह्म) के स्वरूप परम तत्व हैं। चार में

किसी एक का भी स्पर्श विष्णु-पद वाच्य परम पद को प्रदान करता है, किं पुन: चारों का स्पर्श।

वेद काल से लेकर वर्तमान काल तक वैष्णव-रहस्य के अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। वैष्णवीय-विज्ञान का विविध प्रकार से दर्शन वैष्णव समाज में दृष्टिगोचर हो रहा है। जिसके श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन से वैष्णव-पद पर आरूढ़ होना सद्गुरु कृपा से सहज हो जाता है। अस्तु हम ऋषियों, महर्षियों एवं वैष्णव-पद प्रतिष्ठिति पूर्वाचार्यों के ऋणी हैं, जिन्होंने मुझ जैसे कलि की मूर्ति को अपने उपदेश से धर्म की ओर आकृष्ट कर वैष्णवों का किंकर बना दिया है। कृतज्ञता प्रकट करते हुये आप श्री जनों के चरण कमलों में कोटि-कोटि साष्टाङ्ग प्रणाम करके जन्म-जन्म वैष्णवत्व पाने की याचना करता हूँ।

दास ने वैष्णवीय-विज्ञान लिखने का चापल्य वैष्णव समाज की कमी की पूर्ति के लिए नहीं किया है, अपितु सिन्धु को एक अञ्जली जल तथा भगवान भास्कर को एक नगण्य दीप समर्पित करने के समान कैंकर्य किया है, वह भी अपने बल पौरुष से नहीं। भागवतों और आचार्यों की उच्छिष्ट वाणी ही किंकर की वाणी है। अपने इस अबोध शिशु की तोतरी वाणी को मेरे (संत स्वरुप) माता-पिता अवश्य श्रवण करेंगे, ऐसी आशा करता हूँ। धृष्टता एवं त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करते हुए वैष्णव-चरण-रज की भक्ति चाहता हूँ। मेरे परम उदार भागवतों के कर-कमल दास के शीश पर फिरते हुये याचक की झोली अवश्य भरेंगे।

वैष्णव-चरण-रज कृपाभिलाषी
निवेदक एवं ग्रन्थ लेखक
राम हर्षण दास
राम हर्षण कुंज, श्री अयोध्या

दिनांक : माघ कृष्ण ३०
सम्वत् २०३०
२३ जनवरी, १९७४

॥ श्री सद्गुरु चरण कमलेभ्यो नमः ॥
सर्वेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमः
ॐ नमः सीतारामाभ्यां

१. शिष्य का प्रश्न

शिष्य : हे मेरे सद्गुरुदेव ! आप श्री वैष्णव-कुल-कमल के विकासक साक्षात् सूर्य हैं, प्रकाश ही आपका स्वरुप है। आपके आलोक से ही जड़-चेतनात्मक जगत आलोकित होता है, आप बोध के विशुद्ध विग्रह हैं, ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय पद वाच्य स्वयं मेरे श्री आचार्य देव वैष्णव पद-प्रतिष्ठित महाविष्णु हैं, श्री चरण ही उपायोपेय हैं, स्वयं श्री अपने आर्ताधिकारियों की आर्तता अवलोकन कर अज्ञापित तत्व को भली-भाँति ज्ञापन कराने वाले ही केवल नहीं, अपितु अपना सर्वस्व संप्रदान कर अपने स्वरुप से अभिन्न अर्थात, प्रकाशमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, मंगलमय, अमृतमय, प्रेममय एवं रसमय बना देने वाले हैं। रसिकजनों के मन-मानस में नितान्त निर्मल प्रेम की पयस्विनी प्रवाहित होकर उसमें रसमय अनेकानेक भावों की तरंग मालिकाओं का अनवरत आन्दोलन उठते रहना आप ही के कृपा प्रसाद का साक्षात् प्रमाणीकरण है। वैष्णव ज्वर (वैष्णवीय जिज्ञासा) के प्रशमनार्थ आपकी अमृत वाणी ही अचूक औषधि है, अज्ञानान्धकार के निवृत्यर्थ आपकी वचनावली ही किरण माली की किरणें हैं, आपका सहज स्वरुप विधि-हरि-हर से वन्दनीय एवं स्पृहणीय है, आप संशय-वन में बिहार करने वाले मन रूपी मदोन्मत्त गज के गण्डस्थल को विदीर्ण करने वाले बलवान सिंह हैं, भ्रम रूपी मूषकों के भगाने में बिड़ाल जैसी आपकी वाक् विसर्गता है।

आपकी वाणी ही वेद है, जिसका रहस्यार्थ आपकी रहनी से साङ्गोपाङ्ग समझा जा सकता है। वेद-वेद्य परब्रह्म रस रूप से आप के हृदय-कमल के कोष में समग्रतया संप्रतिष्ठित है, जिसकी गंध को ग्रहण करने वाले आसक्त रसिक भ्रमर यत्र-तत्र से अपने आप बिना आमंत्रण के एकत्रित होते रहते हैं, उन अभ्यागतों के संतृप्ति हेतु अहर्निशि मधुरस श्रवता रहता है परन्तु उस कोष में कभी न्यूनता नहीं आती, जबकि प्रत्येक मधुप उतने पूर्ण मकरन्द का पान कर लेता है कि जितना उस अक्षय भण्डार में भरा होता है।

अस्तु, हे करुणा वरुणालय ! आपके युगल पादारविन्दों में मेरा कोटि-कोटि साष्टाङ्ग प्रणाम है। हे शिष्यों के सर्वस्व ! इस दीन दास के उरस्थली में वैष्णवीय रहस्यों के समझने की बलवती जिज्ञासा उत्पन्न हो गई है। आप अन्तर्यामी हैं, यदि इसे अधिकारी समझें तो सर्व प्रथम यह बताने की महती कृपा करें कि विष्णु एवं वैष्णव किसे कहते हैं ? तत्पश्चात अन्य-अन्य वैष्णवीय तत्वों एवं वैष्णवता का वर्णन तब तक करें जब तक विष्णु-वैष्णव और वैष्णवता का चित्र मेरे चित्त-पटल पर चारुतया चित्रित न हो जाय।

-----०-----

२. विष्णु–वैष्णव–परिभाषा (गुरु जी का उत्तर)

गुरु : प्रिय वत्स ! सद्गुरु सच्छिष्य को अपना सर्वस्व प्रदान करने के लिये सदा सुअवसर की प्रतीक्षा किया करते हैं। आर्त जिज्ञासु से कुछ भी छिपाने में वे अपने को केवल असमर्थ ही नहीं पाते वरन् शोक-सिन्धु में निमग्न हो जाते हैं। तुम समाहित चित्त से अपने प्रश्नों का श्रुति शास्त्र एवं संतानुमोदित सिद्धान्त श्रवण करो।

विष्णु शब्द व्यापकतया वेदों में बार-बार उद्धृत किया गया है, जो पूर्णतम परब्रह्म का वाचक है। यह विष्णु शब्द पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा का विशेषण है, अस्तु उस वेद-वेद्य परब्रह्म को सर्वव्यापी होने से विष्णु कहते हैं, विशेषणतया ग्रहण होने से विष्णु शब्द विष्णु के सभी अवतारों का भी विशेषण है, क्योंकि अवतार काल में भी वह अव्ययात्मा अपनी व्यापकता से पृथक नहीं रहता, उसके स्वरुप में कभी किसी कारणवश किंचित विपर्यय का होना असंभव और अशक्य है।

पालनात्मिका शक्ति समन्वित रमा बैकुण्ठ के अधीश्वर भगवान का नाम विष्णु विशेष होने का यही हेतु है कि वे व्यापक ब्रह्म अलग अस्तित्व नहीं रखते। सृष्टि-संरक्षण के लिये चतुर्भुज रूप से ब्रह्म ही उक्त लोक में प्रतिष्ठित हैं। "सभी अवतार व्यापक ब्रह्म के हैं।" मनीषियों ने सबको समझने के लिये प्रत्येक पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतारों के स्तवार्थ के स्तोत्रों में विष्णु शब्द का विशेषण जोड़ कर विशेष्य की महत्ता अर्थात् व्यापकता प्रकट की है। अस्तु यह निर्विवाद

सिद्ध है कि व्यापक होने से ब्रह्म को विष्णु कहा जाता है और सभी वैष्णवों को यह सर्वथा मान्य है, इसमें शंका का समावेश नहीं, तार्किकों के तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं।

१-वत्स ! यह सारा का सारा संसार विष्णु पद वाच्य व्यापक परब्रह्म की चिन्मयी लीला है, जो उस महामहिम्न के महिमा की विकासिका है, जिसमें सृजन, संरक्षण और संहार के नाट्य का नैपुण्य विस्तृत रूप से अनवरत दृष्टिगोचर होता रहता है। खेल और खेल का आधार एवं उसकी उपकरण सामग्रियाँ खिलाड़ियों के साथ उसी व्यापक ब्रह्म से निर्मित होकर प्रकट हुई हैं, उसी में स्थित हैं, वही इसके आदि, मध्य और अन्त में प्रतिष्ठित हैं वही ब्रह्म इसको सब ओर से बाहर-भीतर व्याप्त किए हुए हैं, वही इसका निमित्त उपादान और सहकारी कारण है। सरल अर्थ में यह उसी का है, उसी के लिए है, उसी का बनाया है, उसी में प्रतिष्ठित है, इसलिये यह जीव जगत स्वयं और सहज सब का सब वैष्णव है।

निर्विवाद अपत्यर्थ में विष्णु (व्यापक ब्रह्म) से जायमान स्थावर एवं जंगम जगत को वैष्णव कहते हैं परन्तु सभी प्राणी एक स्वर से अपने को वैष्णव स्वीकार नहीं करते, इसमें उनका अज्ञान ही हेतु है जैसे मातृ-पितृ हीन बन में विसर्जित की हुई शिशु-संतति अपने यथार्थ माता-पिता का ज्ञान न रखकर, बड़े होने पर भी कोल-किरातों के बीच में रहने के कारण उन्हीं में अपनी गणना करती है, ठीक इसी प्रकार वास्तव में वैष्णव होते हुये भी दुनिया अपने को अवैष्णव मानती हुई अवैष्णवता पर आरूढ़ होती है। अवैष्णवता अंधकार की ओर ले जाती है, अस्तु अवैष्णव अंधकार में प्रवेश करते हैं। वैष्णवता प्रकाश में प्रवेश कराती है, अतएव वैष्णव उज्जवल अक्षय आलोक में संप्रविष्ट होते हैं। यदि कोई घोड़ा अपने मालिक की अवहेलना करके अपनी पीठ पर स्थित रहने नहीं देता, बार-बार उसे फेंक देता है, तो वह अश्व-पति उस घोड़े को घोड़ा-गाड़ी में जोतने एवं गोन लादने के काम में ले लेता है जिससे उस बद्तमीज घोड़े को भार वहन करते-करते कठिन से कठिन कष्ट का अनुभव करना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार अपने परम पिता भगवान की संतति अपने को न मानने वाले कृतघ्नी जीवों को क्लेश का शिकार होना पड़ता है।

२- सर्वाङ्गतया सदा सर्वभावेन विष्णु पद वाच्य सगुण स्वरूप पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी और अर्चावतार की अनुकूलता ग्रहण करने वाले ही वैष्णव कहलाते हैं।

३- पूर्णतम् परब्रह्म परमात्मा के सगुण साकार स्वरूप में अनन्यतया उपासना एवं प्रपत्ति करने वाले विष्णु के अनुयाई वैष्णव कहलाते हैं। राम, कृष्ण, नारायण, नृसिंह, वामन, वाराह और हरि सभी शास्त्रानुमोदित व्यापक ब्रह्म के स्वरूप हैं, अस्तु, सभी का विष्णु शब्द विशेषण है। सभी को विष्णु कहते हैं, इसी प्रकार सभी भगवत् अवतारों के अनन्य उपासकों को वैष्णव पुकारते हैं।

४- जिस प्रकार मंगल सूत्रादि वाह्य वेष, वेद वर्णित विधि से धारण करके, तथा अन्त: करण से प्रीति, प्रतीति पूर्वक पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अनन्यतया पति सेवा करने वाली स्त्री को ही सती साध्वी एवं पति परायणा कहते हैं, उसी प्रकार गुरु प्रदत्त पंच संस्कार से सम्पन्न होकर हृदय से भगवदनुकूलता धारण करने वाले कैंकर्य परायण अनन्य भागवत को वैष्णव कहते हैं।

५- चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर को ही ब्रह्म कहते हैं। जीव और प्रकृति उस व्यापक ब्रह्म के शरीर हैं और वह शरीरी है। अस्तु इन तीनों के परिपक्व ज्ञान में जो निष्ठावान हो, अर्थात् आचार्य की अनुकम्पा से उपर्युक्त तत्वों को भली-भाँति समझ लिया हो या जिसे समझने की परम जिज्ञासा हो, तत्वज्ञान को ही अपना विषय बना लिया हो, उसे वैष्णव कहते हैं।

६- जो भगवत एवं भागवत द्वेष विहीन है, जिसे भागवद्धर्मावलम्बन ही अनुष्ठानीय है, वही वैष्णव कहलाने योग्य है, उसी को वैष्णव कहते हैं।

७- जो भगवद्भक्तों की ऐहिक और पारमार्थिक वृद्धि देखकर परम प्रसन्नता का अनुभव करता है तथा पराभव के श्रवण मात्र से शोक सागर में निमग्न होने लगता है, वही वैष्णव है।

८- जिसकी कहनी और करणी आन्तरीय रहनी में घुल मिलकर भागवद्धर्म की परिचारिका बनी हुई हो, वही वैष्णव है।

९- जो सर्व भूतों का सहज अनुकूल सेवक है, जीव जगत के कल्याण की कामना ही एक मात्र जिसकी कामना है, कामना ही केवल नहीं, जिसका सम्पूर्ण प्राणिवर्ग के हितार्थ मन, वचन, कर्म, एवं तन-धन सभी सम्यक् प्रकारेण समर्पित है, आत्मवत् सबके सुख-दुख का अनुभवी है, सभी का सहज सुहृद है, कीट-पतंग के दुख को भी देख जो संतप्त हृदय होकर दुख मूर्छा को प्राप्त होता है, वही सच्चा वैष्णव है क्योंकि वह विष्णुमय जगत की परिचर्या को ही अपना प्रधान धर्म समझता है, उसके हृदय में स्वार्थ की गंध कहाँ ? वह दया की मूर्ति होता है। उसकी सारी विभूतियाँ परोपकार के लिये होती हैं, घट-घट में उसे ब्रह्म के दर्शन होते हैं।

१०- जिसमें नीच वचन सहने की क्षमता है, जो अहंकार से सर्वथा विमुक्त है, जिसके हृदयाङ्गण में दया-दारिका अनवरत नव-नव नृत्य करती हुई जड़ चेतनात्मक जगत के उपभोग के लिये होती है, जिसके हृदय में क्रोध के उभाड़ कभी नजर नहीं आते क्योंकि उसकी दृष्टि सर्वभूतों में अपने व्यापक ब्रह्म (विष्णु) का दर्शन करने वाली है, अत: वही वैष्णव है।

११- जो वाङ्मय वेद-विष्णु के वाक्यों का सदा समादर करते हुये सदाचार से संयुक्त और अनाचार से वियुक्त रहने के स्वभाव वाला है, उस सर्वभूत हितैषी आर्य पथावलम्बी भगवान के भक्त को वैष्णव कहते हैं।

१२- जो जन-जन का अपराध सहन करता है, अपराधी के कल्याण की कामना रखते हुये समय आने पर उसके साथ आर्योचित व्यवहार करता है। विश्व यदि वह्नि बने तो उसके शांति के लिये जिसका मुख पानी बना रहता है, शब्द-शस्त्र के प्रहार को जो उपदेश समझता है, घट-पट में व्यापक मृत्तिका और सूत्र की भाँति अपने व्यापक ब्रह्म (विष्णु) का घट-घट में जो दर्शन करने वाला है अस्तु वह किस पर क्रोध करे। बस उसी को वैष्णव समझना चाहिए।

१३- वैष्णव पद्धति सुर-बीथिका, जिस जनमानस-गगन में अहर्निशि एक रस उदित होकर इतरजनों की पथ-प्रदर्शिका बनी रहती है, जिसके कीर्तिचन्द्र में आसुरीय वृत्ति के राहु का कभी संस्पर्श नहीं

होता, जो वैष्णव जगत में रुचिकर एवं प्रिय दर्शन वाला है, उसी को वैष्णव समझना चाहिए।

१४- जो भगवान के श्रेयाति श्रेय गुण-मुक्ताओं को एकत्रित कर, आत्म-सूत्र में पिरोकर अपने हृदय का हार बनाये रहता है। जिसकी गुण-गाथा विष्णु के अतद्रूप हेय गुणों से सदा असम्बन्धित होती है, उसी को वैष्णव समझना चाहिए।

१५- जो भगवन्नाम पूर्वक दासान्त नाम वाला हो, जो विष्णु के आयुधों (धनुर्वाण, शंख-चक्रादि) को धारण करने वाला हो, जिसके गले में तुलसी की दाम एवं ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित हो, जो अपने भगवान के नाम कीर्तन का व्रत ले लिया हो, मूल-मंत्र का परम भक्त हो, रूप का ध्यान करते हुए सदा इष्ट की लीला चिंतन में लगा रहता हो, जो धाम निष्ठा वाला हो, वही वैष्णव है।

१६- जिसे यह जगत ज्यों का त्यों रहते हुए भी वैष्णव पद (परम पद) सा भासित होता रहता है, स्वप्न में भी संसार नाम की कोई पृथक वस्तु का अस्तित्व जिसके मन में नहीं रहता है, वही वैष्णव है।

१७- जिसके पाप विष्णु के वियोगाग्नि में भस्मीभूत हो चुके हैं, प्रभु मिलन की अत्यन्त उत्कण्ठा में जिसकी पुण्य राशि भी उपेक्षित होकर उसके सम्मुख आने में असमर्थ हो गई है, वही वैष्णव है।

१८- भौतिक सम्बन्ध का विच्छेद कर भगवान के साथ जिसका सहज-सम्बन्ध हो गया है, जो भगवत् तत्व समझकर अनन्य प्रयोजन हो चुका है, अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व और अनन्य शरणत्व भाव से भावित होकर जो निश्चिन्त हो गया है, वही वैष्णव है।

१९- जिसका स्वभाव भगवद्भजनमय है, जिसकी जीवन पद्धति दैवी संपति से संयुक्त है, वही वैष्णव है।

२०- जो आचार्य एवं आचार्य-प्रदत्त भगवत मंत्र तथा भगवान में एक ही परम तत्व का दर्शन करता हुआ तीनों का परम भक्त होता है, वही वैष्णव है।

२१- मूल मंत्र, मंत्र द्वय और चरम मंत्र में जिसका भली-भाँति अधिकार हो गया है, जो इनके अनुसंधान और अनुष्ठान में सदा संलग्न रहता है, वही वैष्णव है।

२२- अन्याश्रय का परित्याग कर भगवान विष्णु के अवलम्बन को ग्रहण करने वाले तदीय जनों को वैष्णव कहते हैं।

२३- जो भगवत स्मरण मात्र से प्रेम की प्रगाढ़ अवस्था को प्राप्त कर प्रेम विभोर हो जाता है, जिसके शरीर से प्रेम के समुज्वल प्रकाश की किरणें निकल-निकल कर लोक को प्रकाशित करती रहती हैं, सात्विक भाव से भावित होकर जिसने अपने आप को खो दिया है, वही वीर वैष्णव हैं क्योंकि वह प्रभु प्रेम का पुजारी है।

२४- जो भगवान के वियोग में अत्यन्त आर्ति दशा में सदा स्थित रहता है। इष्ट दर्शन की त्वरा में जो अपने शरीर को नहीं सहता, विरह की दसों दशाओं के पालने में उन्मत्त होकर जो झूलता रहता है, वही संप्रवीर वैष्णव है।

२५- जो भगवान की अपृथक भूता "श्री" विशेषण सम्पन्ना अचित्यानन्त शक्ति के सहित विष्णु पद वांच्य परब्रह्म की भक्ति एवं प्रपत्ति करता है, उसे श्री वैष्णव कहते हैं अर्थात मधुरातिमधुर मिथुन मनमोहनी जोड़ी लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण, सीताराम के अनन्योपासकों को ही श्री वैष्णव कहते हैं।

२६- मंत्र द्वय के श्रीमत् शब्द के यथार्थ अर्थ रहस्य को समझकर जो प्रपत्ति समय "श्री" जी को पुरुषकारतया स्वीकार करके भोगकाल में युगल जोड़ी का भोग्य अपने को समझता है अर्थात, शक्ति और शक्तिवान (लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण एवं सीताराम जी) को सर्वशेषी, सर्वभोक्ता, सर्वरक्षक समझ अपने को उनका शेष, भोग्य और रक्ष्य मानता है, वही श्री वैष्णव है।

२७- जो युगल स्वरुप में अभेद दृष्टि रखते हुये दोनों के कैंकर्य परायण बना रहता है, दोनों के सुख को स्वसुख और दोनों की इच्छा को अपनी इच्छा समझता हुआ दोनों के प्रेम में विभोर बना रहता है, वही श्री वैष्णव है।

२८- श्री जी की अनुकम्पा से ही दीनानाथ दीनों पर द्रवीभूत होकर अपना परम पद एवं कैंकर्य प्रदान करते हैं ऐसा दृढ़ विश्वास कर जो श्री जी की कृपा प्राप्ति की बाट देखता हुआ भगवद्भजन में अनवरत लगा रहता है, वही श्री वैष्णव है।

२९- मछली यथा जलमय है तथा भगवत स्वरूप श्री मय है। जो श्री जी हैं सो भगवान हैं। जो विष्णु हैं वह श्री जी हैं। इस दार्ढ्यता में स्थित होकर जो युगल स्वरूप का सेवन करता है, वही श्री वैष्णव है।

---o---

३. वैष्णवता के लक्षण

१- जिस वैष्णव के आश्रम-दर्शन करने मात्र से ही संशय और भ्रम से भरे हुये मोह की निवृत्ति होने लगे तो समझना चाहिये कि उस वैष्णव में वैष्णवता ही वैष्णवता समग्रतया विद्यमान है।

२- जिस किसी वैष्णव के समीप पहुँचने पर पापी के हृदय में भी भगवद्भक्ति का स्फुरण होने लगे तो समझ लेना चाहिए कि यहाँ अवश्य ही वैष्णवता का विकास हो रहा है।

३- जिसके प्रकाश से अज्ञानांधकार से आछन्न पुरुषों की उरस्थली भी प्रकाशित हो उठे तो निश्चय कर लेना चाहिये कि यह वैष्णवता का ही आलोक है।

४- जिस भगवद्भक्त के दर्शन मात्र से मन में सहज ही पवित्रता का प्रोदय हो जाय, साथ ही भगवती-भक्ति-भागीरथी का प्रवाह हृद-प्रदेश में प्रवाहित होकर मन-मरुस्थल को प्लावित करने लगे तो उस वैष्णव में निःसन्देह वैष्णवता का वास स्थान समझना चाहिये।

५- जिस वैष्णव के संभाषण से स्वस्वरुप और परस्वरुप की झलक बुद्धि के आइने में आने लगे एवं जागतिक आनन्द से विलक्षण आनन्द की अनुभूति आत्मा में होने लगे, निर्विवाद मान लेना चाहिये, कि इस वैष्णव में वैष्णवता के विकास का ही यह प्रमाण है।

६- जिस वैष्णव के स्पर्श से प्रभु प्रेम का प्रकाश, स्पर्श करने वाले के हृदय में प्रकाशित होकर अपने प्रेम किरणों द्वारा उस शरीर के रोम-रोम से फूट-फूटकर अन्य के आँखों का विषय बन जाय, तो जान लेना चाहिये कि उस वैष्णव में सच्ची वैष्णवता के लक्षण पाये जाते हैं।

७- जिस वैष्णव के सहवास से साधक में वैष्णवता के लक्षण बिना प्रयास उतरने लगे तो समझ लेना चाहिये कि उस वैष्णव में वैष्णवता

कूट-कूटकर भरी हुई है, जैसे चन्दन तरु के निकटतम प्रान्त में रहने वाली वृक्षावली में सहज ही चन्दन की सुन्दर सुगन्ध भर जाती है।

८- जिस वैष्णव में सर्वभूत हितैषणा एवं प्राणिमात्र में कृपा, करुणा और मैत्री की दृष्टि से तदनुकूल व्यवहारिकता देखी जाये तो उस भगवद्भक्त में वैष्णवता का समावेश हो गया है, यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये।

९- जिस वैष्णव का स्वभाव भगवद् भजनमय निर्माण हो चुका है, जो भगवद्भागवदाराधन बिना एक क्षण भी अपने जीवन को नहीं सह सकता, जिसकी जीवन-पद्धति दैवी-संपत्ति से संयुक्त है, समझ लेना चाहिए कि उस वैष्णव को वैष्णवता ने वरण कर लिया है।

१०- जिस भगवद्भक्त की वैष्णवीय संपत्ति एवं वैष्णव तेज अन्य साधनावलम्बियों को आश्चर्य में डालकर अपनी ओर आकर्षित करने में सर्वथा समर्थ हो तो समझ लेना चाहिये कि यह वैष्णवता देवी का ही चमत्कार है।

११- जिसका हृदय भक्त और भगवान की भक्ति से ओत-प्रोत होकर अन्य निकटवर्ती बन्धुओं की उरस्थली को अपने जैसा सरस बनाने में पुत्रोत्पति से सर्वथा विलक्षण परमानन्द का अनुभव कराता हो तो यह ज्ञान निश्चय दृढ़ हो जाना चाहिए कि यहाँ सौभाग्य से हमें वैष्णवता के दर्शन हो रहे हैं।

१२- जिस वैष्णव का हृदय अन्य वैष्णव के संप्रयोग से संप्रहर्षित होकर भगवत मिलन के आनन्द का अनुभव करने लगे तो मान लेना चाहिए कि यह साधु-समागम वैष्णवता का ही द्योतक है क्योंकि, सुखानुभूति करने वाले सभी सज्जनों में वैष्णवीय प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहा है।

----o---

४–वैष्णव में श्रद्धा

१- वैष्णव का हृदय श्रद्धा की साकार मूर्ति होता है। उसकी श्रद्धा ही कालान्तर में प्रेमा-भक्ति का स्वरुप धारण कर लेती है।

२- श्रद्धा के कारण ही कोई भी वैष्णव भागवद्धर्म का अनुयायी बन पाता है।

३- श्रद्धा ही के कारण वैष्णव में आस्तिक भावना उदय होकर उस अस्ति के लक्ष्य और आधार भूत भगवान के दर्शन कराने में समर्थ होती है।

४- श्रद्धा ही वैष्णव के हृदय में सम्पूर्ण सद्गुणों का आवाहन करके सदा-सदा के लिए उरस्थल को उनका निवास स्थान बना देती है।

५- श्रद्धावान वैष्णव ही वैष्णवता के विकास का दर्शन अपने में कराने के लिए समर्थ हो सकता है।

---o---

५. वैष्णव में सद्गुरु वरण

१- वैष्णव लोग सद्गुरु की शरणागति ग्रहण करके ही विशुद्ध वैष्णव बनते हैं। उनके ज्ञान में शास्त्रानुसार गुरु-वरण करना अनिवार्य और अपरिहार है क्योंकि वे श्रुति पथ के सम्मान करने वाले संनिष्ठ संप्रवर्तक होते हैं।

२- अज्ञान की अतिशाया निवृत्ति, बिना ज्ञानी गुरु के असंभव और अशक्य है जैसे सूर्य के बिना तम-पूर्ण रात्रि का अदर्शन दुर्लभ ही नहीं अप्राप्य और असाध्य है, अस्तु कल्याण कामी सज्जन सदाचार्य-समाश्रयण करके ही वैष्णव बनते हैं।

३- आचार्यवान पुरुष ही वेद-वेद्य-पूर्णतम-परब्रह्म परमात्मा भगवान के तत्व समझने तथा उनका दर्शन करने और उन्हीं में प्रवेश करने के लिए समर्थ हो पाते हैं इसलिए सज्जन गण वैष्णव गुरु-वरण किये बिना नहीं रहते।

४- भागवद्धर्मों का प्रशिक्षण सदाचार्य के समीप ही संभव हो सकता है, अन्यत्र देवताओं को भी दुर्लभ है। अस्तु, शुद्ध बोध स्वरुप सद्गुरु की प्रपत्ति वैष्णव अत्यन्तावश्यक समझते हैं।

५- अखण्ड ज्ञानैक-रस, सर्व-समर्थ भगवान अपने स्वरुप का बोध तथा अपने प्राप्ति का उपाय बिना गुरु के न बताने का नियम ले रक्खे हैं इसलिए भगवान के वाक्यों का अनुमोदन एवं अनुसरण करते हुए वैष्णव आचार्य-परम्परा को स्वीकार करके सद्गुरु की शरण लेते हैं।

६. वैष्णव में पंच संस्कार विधि

१- ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण करना वैष्णवत्व प्राप्त करने में सहायक है इसलिए वैष्णव तिलक स्वरुप किया करते हैं। जो वैष्णव शास्त्र सम्मत है।

२- विष्णु प्रिया श्री तुलसी-दाम को वैष्णव इसलिए धारण करते हैं कि उन्हें उसके धारण करने से प्रभु का प्यार तुलसी जी के समान ही प्राप्त हो जाता है । भगवान और भागवतों के वाक्य इस विषय में प्रमाण हैं।

३- शंख-चक्र, धनुर्बाणादि भगवान के आयुध हैं, जिनके चिह्न भक्त अपने बाहुमूल में धारण करते हैं, वह इसलिये कि परमपद का मार्ग उनके उरस्थल में प्रकाशित हो जाय, शास्त्र स्वयं इस विषय के साक्षी हैं।

४- मूल मंत्र वैष्णव लोग अपने सद्गुरु देव से इसलिये लेते हैं कि उन्हें अर्थ-पंचक तत्व जो श्रुति का सार है, प्रत्यक्ष अनुभव में आकर बैकुण्ठ नगर (परम पद) की प्राप्ति करा दे। मूल मंत्र के ज्ञान मात्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा वैष्णवीय शास्त्रों का सिद्धांत है, जिसे ग्रहण कर वैष्णव इसी देह में उसका अनुभव कर लेते हैं।

५- भगवन्नाम पूर्वक दासान्त नाम वैष्णवों का इसलिये अनिवार्य और आवश्यक होता है, कि उन्हें यह अभिमान सर्व देश व सर्वकाल में बना रहे, कि मैं भगवान के परतंत्र हूँ तथा उनका नित्य शेषभूत सहज दास हूँ, अस्तु तदनुकूल मुझे आचरण भी करना चाहिये, जिससे आत्मा का सहज स्वरुप और धर्म सुरक्षित रहे।

नोट :- उक्त पांचों संस्कार वैष्णव के पंचभूतों की शुद्धि करते हुए मन में पवित्रता तथा बुद्धि में सूक्ष्मता उत्पन्न करके आत्मा और परमात्मा के दर्शन कराने में सक्षम होते हैं, अस्तु ये पंचसंस्कार वैष्णवों में सदा सेवनीय हैं।

७. वैष्णव में आचार्य रुचि परिग्रहीत प्रपत्ति की प्रधानता

१- वैष्णव, आचार्य रुचि परिग्रहीत, सर्वाधिकारिणी, परम स्वतंत्र, अपेक्षा रहित, देहान्तर में ही पूर्ण फल प्रदान करने वाली, प्रपत्ति के पथ का पथिक होता है। वह शुद्ध शरणागति के मार्ग से अपने को विचलित

करने में असमर्थता का अनुभव करता है, क्योंकि प्रपत्ति उसके स्वरूपानुकूल है जो देह के अनन्तर ही परम पुरुषार्थ स्वरुप परम फल प्रदान करती है।

२- वैष्णव अपने को सर्वसाधन हीन एवं सहस्त्रों असह्य अपराधों का भाजन मानता है। इस दशा में वह भगवच्चरणों की शरण लिये बिना अपना किंचित कल्याण किसी प्रकार कहीं भी नहीं देखता, इसलिए प्रपत्ता बनकर प्रपतब्य प्रभु की प्रपत्ति करता है।

३- वैष्णव प्रपत्ति-पथ को निर्विघ्न और आनन्द से ओतप्रोत अवलोकन कर स्वस्वरुप के विपरीत दस दोषों से संयुक्त अन्याश्रय और अन्य साधनों का सहारा सर्वथा परित्याग करके भगवान की शरण में सदा पड़ा रहता है।

४- वैष्णव भगवत - वाक्यों में प्रीति और प्रतीति करके एक भगवान के चरणों में एक बार प्रपत्ति करके अभय और निष्पाप शोक रहित सुख स्वरुप हो जाता है, अस्तु एक प्रपत्ति को ही वह सर्वसाधनमयी, धर्ममयी, गुणमयी और अन्य साधनों से दस प्रकार से श्रेष्ठ समझता है।

५- वेद वाक्य और आचार्य वाणी को सादर ग्रहण करके अहंकार-ममकार शून्य होकर न्यास विद्या का प्रेमी वैष्णव शरणागति का फल एवं प्रभु से रक्षित होने का फल अपने परम प्यारे प्रभु को ही अर्पण कर प्रभु का कैंकर्य करता हुआ प्रभु के लिए प्रपत्ति पथ पर पड़ा रहता है।

नोट - प्रपन्न-वैष्णव की प्रपत्ति में प्रवृत्ति अन्य साधनों की अज्ञानता और आशक्ति के कारण नहीं है, स्वरुपज्ञता ही इसमें हेतु है।

---०---

८. वैष्णव में आचार्याभिमान

१- वैष्णव, स्वाचार्य की सेवा में ही परमानन्द का अनुभव करते हैं। सदगुरु सेवन के अतिरिक्त अन्य सुख-संप्राप्ति का सुअवसर संभव भी हो जाय तो वह उन्हें नहीं चाहिए।

२- वैष्णव, आचार्य की समीपता को ही परमपद समझते हैं, नाममात्र उससे अलग होना नहीं चाहते। किंचित पृथक होने की कल्पना

दुसह दुखदायिनी हो जाती है, कितने ही आचार्याभिमानी वैष्णव गुरु-वियोगाग्नि में जलकर भस्म हो गए।

३- आचार्य मुखाम्भोज विकसित बना रहे अपने आचरण से, बस, वैष्णव का यही परम पुरुषार्थ है।

४- वैष्णव, ध्यान का मूल गुरुमूर्ति, मोक्ष का मूल गुरु कृपा, पूजा का मूल गुरु-पद-रज और मंत्र का मूल गुरु वचन मानते हैं।

५- आचार्यवान् पुरुष अपने आचार्य श्री को पूर्णतम, परब्रह्म, परमात्मा, सनातन-महाविष्णु के साक्षात सगुण-साकार विग्रह मानते हैं। गुरु में मनुष्य बुद्धि उनकी कभी नहीं होती। वे सदा ही सदाचार्य का मंङ्गलानुशासन करते हुए शुश्रुषा परायण बने रह कर उनका अनुवर्तन करते रहते हैं।

---०---

९. वैष्णव में गुरु-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार

१- सद्गुरु सच्छिष्य की आत्मा के कल्याणार्थ अनुष्ठान करके उसके आत्मा की रक्षा करते हैं। शिष्य सादर सप्रेम सद्गुरु के शरीर की रक्षा के लिए शुश्रुषा परायण रहना परम पुरुषार्थ समझता है।

२- सद्शिष्य सद्गुरु को अपने समेत अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। सदाचार्य अपने जिज्ञासु शिष्य को परम परमार्थ सम्बन्धी अपना सर्वस्व ज्ञान सम्यक् प्रकारेण प्रदान कर देते हैं।

३- सद्गुरु शिष्य को परमात्मा का सम्यक् बोध कराकर अप्रमेय अमूल्य परम पद के सहित प्रभु को देकर अल्प, असत और नश्वर द्रव्यादि के लिये शिष्य के हाथ के नीचे अपना हाथ नहीं करते, परन्तु शिष्य अपने आत्मा सहित शरीर सम्बन्धी वस्तु को सद्गुरु देव के श्री चरणों में समर्पित किये बिना स्वस्वरुप की हानि समझता है।

४- सद्गुरु और शिष्य एक दूसरे के हित में लगे रहते हैं क्योंकि शिष्य अपने से अपनी आत्मा की रक्षा करे तो स्वस्वरुप भ्रष्ट होता है इसी प्रकार गुरु अपने से अपने शरीर की रक्षा करें तो उनका स्वस्वरुप नष्ट होता है।

५- सद्गुरु अपनी वस्तु से अपना निर्वाह करते हैं अर्थात अहंकार

शून्य शिष्य जब शरण में आया उसी समय गुरु को सर्वात्म समर्पण कर दिया तो सब वस्तु गुरु की हो गई, इसलिये जो शिष्य अपनी बनाकर पुन: गुरु को देते हैं, उसे वे विष तुल्य समझकर नहीं ग्रहण करते। शिष्य अपना निर्वाह गुरुदेव के प्रसाद से करता है क्योंकि उसके पास जो कुछ भी शरीर रक्षा के लिये है, वह सदाचार्य का है। शिष्य अपने आचार्य को साक्षात् विष्णु समझकर तदनुसार सादर सप्रेम कैंकर्य परायण बना रहता है। आचार्य शिष्य को वैष्णव समझकर तत्व समझाने की सेवा करते हुये कुपथ में उसके मनमानी गमन के न रोकने का अपराध नहीं करते।

---०---

१०. वैष्णव में गुरु परम्परा का महत्व

१- वैष्णव अपने आचार्य-परम्परा का अनुसंधान इसलिए करते हैं कि परम्परा के आचार्यों से अपने सम्बन्ध की हानि न हो क्योंकि गुरु परम्परा के बिना प्रपत्ति भी उपायान्तर के समान है।

२- आचार्यों का नित्य अनुसंधान पूर्वक स्मरण करने से उनका ज्ञान गुण-गणों के साथ अपने में उतर आता है, अस्तु, गुरु परम्परा नित्य स्मरणीय है।

३- आचार्यों के कुल के हम हैं, इस प्रकार का अभिमान बना रहने से भगवान भागवत सम्बन्धी को अपना परम पद देते हैं, यह शास्त्र सम्मत संतों का दृढ़ निश्चय है।

४- भक्तों का भजन करने से भगवान का भजन स्वयं हो जात है, जिसका परम फल भी दासों के दास को सहज ही सुलभ होता है। अस्तु आचार्य परम्परा में प्रेम होना अनिवार्य है।

५- प्रपन्न चेतन के, आचार्यों के कृत्यों को देखकर भगवान उनके वंशोद्भव दासों के दोषों को विस्मरण कर अपराध करने पर भी अपना परम पद देते हैं, इसलिये वैष्णव आचार्य परम्परा का नित्य स्मरण कर आचार्यों से अपना सम्बन्ध जाग्रत रखते हैं।

नोट :- प्रत्येक वैष्णव अपने आचार्य-परम्परा का ज्ञान उसी प्रकार रखता है, जैसे ब्राह्मण अपने-अपने कुल, गोत्र, शाखा, सूत्र-प्रवर और

वेद-देवता इत्यादि से युक्त अपने पिता, पितामह, प्रपितामह के प्रति परम श्रद्धा रखते हुए और-और पूर्वजों का ज्ञान रखता है।

---०---

११. वैष्णव में प्रभु सेवा समझ कर शिष्य करने की विधि

१- वैष्णव किसी भी शरणागत चेतन को शिष्य करते समय "मैं आचार्य हूँ" ऐसा मन में भी नहीं आने देते। वे मंत्र द्वय तथा गुरु परम्परा का स्मरण कर अपने आचार्य की आधीनता स्वीकार किये हुये परम्परा-विस्तार के लिए एवं भगवान के सेवार्थ शिष्य को मूल मंत्र प्रदान करते हैं।

२- गीतोक्त भगवद्-वाक्य हैं, कि जो गुह्यतम प्रपत्ति परक उपदेश मेरे भक्तों को (शरणागत चेतनों को) श्रवण कराकर उसे धारण कराता है, वह मेरी पराभक्ति कर चुका। मुझे उससे अधिक कोई प्यारा नहीं है, अस्तु सद् वैष्णव प्रभु प्रसन्नता के लिये अहं रहित रहस्यत्रय का उपदेश करके शिष्य बनाते हैं।

३- शरण में आये हुये चेतन का आतिथ्य सत्कार अपने वचन के द्वारा सदाचार्य किया करते हैं, न कि स्वार्थ का अनुसंधान करके। यह उनका महत् कार्य प्रभु-प्रीत्यर्थ ही होता है।

४- शिष्य के दिये हुये सर्वस्व दान-अर्थात् आत्म समर्पण को सद्गुरु, भगवान के लिये अर्पण कर देते हैं। तत्पश्चात स्वयं शिष्य के लिये अपना सर्वस्व प्रदान करके ही कृतकृत्य होते हैं, जिसमें स्वार्थ और अहं का सर्वथा अभाव बना रहता है।

५- शिष्य करते समय सद्गुरु अपने आचार्य का स्मरण कर शिष्य के साथ आचार्य के समान ही प्रतिपत्ति करते हैं। उसका प्रकार यह है कि अहा यह दास तो अल्पज्ञ अज्ञानी जीव है, जड़वत इसके आचरण हो रहे हैं फिर भी आचार्य देव के अपना लेने से यह जीव मेरी शिष्यता को ग्रहण करने को आया है। इसमें इसी की प्रधानता है जैसे अत्यन्त कामी पुरुष काठ की कामिनी को भी आलिंगन करता है, उसी

केवल वैष्णव वेष से विभूषित देखकर ही अपने आचार्य रूप में वरण कर रहा है, यह कार्य इसके विष्णु भक्ति से भरे हुये ह्रदय का ही परिचायक है, मेरे नहीं। अस्तु वैष्णव निरभिमानी होकर प्रभु प्रीत्यर्थ ही शिष्य किया करते हैं।

---०---

१२. वैष्णव में भागवत परिचर्या

१- वैष्णव भागवताराधन, भागवताराधन के लिये ही किया करते हैं, वे भक्तों की पूजा को साक्षात् सर्वेश्वर भगवान की सेवा समझते हैं।

२- वैष्णव, भक्त और भगवान में किंचित भेद का अनुसंधान नहीं किया करते। भगवदनुभव के सदृश भागवतानुभव करना उनका सहज स्वभाव होता है।

३- वैष्णव गण बिना संत सेवा के भगवान की सेवा का कोई मूल्य नहीं करते । भक्तों के सेवन से ही भगवान की तुष्टि-पुष्टि समझते हैं।

४- संतों का सन्मान, समागम और अनुभव करना वैष्णव साध्य समझते हैं, साधन नहीं। संत संमिलन के आनन्द में वे भगवान को भी भूल जाते हैं।

५- सत्संग-सुधा का पान करने के लिये (जिसमें भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम की माधुरी ही माधुरी पूर्णतया प्रतिष्ठित है) सदा अतृप्त ही बने रहते हैं इसलिये वैष्णव संतों का सेवन अपना उद्देश्य बना लेते हैं।

---०---

१३. वैष्णव में सत्संग सेवन

१- वैष्णव अपने स्वरुप रक्षा के लिये सत्संग को अपेक्षित तया स्वीकार करके निरन्तर उसका सेवन करते हैं।

२- वैष्णव सत्संग से ही सद्गुणों की संप्रवृद्धि समझते हैं, अस्तु, वे सत्संग प्रिय होते हैं।

३- वैष्णव सत्संग को ही प्रभु प्रेमोत्पादक एवं भगवद्दर्शन का दानी जानकर उसका सदा सेवन करते हैं।

४- वैष्णव सत्संग को ही परम साध्य समझते हैं। अस्तु वे संत समागम से विरत नहीं होते।

५- वैष्णव सत्संग-रस के रसिक होते हैं। उन्हें सत्संग के बिना रहने की कल्पना विरह-वेदना की जननी जान पड़ती है। अस्तु वे सज्जनों के समागम के बिना रहने में असमर्थ होते हैं क्योंकि भागवतों की गोष्ठी के बिना भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम, गुण और स्वभावानुभव के रस का आस्वाद अन्यत्र अप्राप्य ही रहता है।

---o---

१४. वैष्णव का वास स्थान

१- वैष्णव का स्वरूपानुकूल वास स्थान वैष्णवों के बीच में अत्युत्तम और वैष्णवत्व का विवर्धन करने वाला होता है।

२- सद्गुरु के सन्निकट सर्वदा वास करना ही वैष्णव के लिए सर्वोत्तम है। जो सर्वस्व प्रदान करने में समर्थ है।

३- अपने भगवान के अवतार कालीन लीला धाम में अर्चा विग्रह के ग्राम एवं दिव्य-देश वैष्णवोचित वास स्थल हैं।

४- पूर्वाचार्यों की भजन-भूमि वैष्णव को भक्ति भाव में दृढ़ता उत्पन्न करने वाली, वास करने के लिये स्वरूपानुरूप है।

५- पर्वतीय सुरम्य सुखप्रद प्रदेश एवं पवित्र नदियों का किनारा एकाग्रता पैदा करने वाला सिद्धि का सहायक है, वह वैष्णव के सेवन योग्य है।

---o---

१५. वैष्णवों का भोजन

१- वैष्णव का भोजन वैष्णव-प्रदत्त भगवत-प्रसाद ही स्वरूपानुरूप है।

२- सत्यता से धर्मानुकूल स्वयं अर्जित अन्न का भोग भगवान को अर्पण करके ही शीथ प्रसादी सेवन करना वैष्णव के अनुकूल है।

प्रकार यह जीव मुझे ३- मधुकरी वृत्ति से वैष्णव अपनी क्षुधा शान्ति करे तो वह भी उसके अनुरूप है किन्तु वह अन्न वैष्णव के घर भगवत् अर्पण किया हुआ हो।

४- बिना याचना के अपने आप वैष्णवों से आई हुई द्रव्य का अन्न भगवदर्पण कर प्रसाद पाना वैष्णव के अनुकूल भोजन है।

५- शीला-वृत्ति से इकट्ठा किया हुआ अन्न भगवत-भागवत को अर्पण करके शेष प्रसाद पाकर निर्वाह करना वैष्णव के अनुकूल है।

---o---

१६. वैष्णव की देह यात्रा

१- वैष्णव अपनी देह यात्रा से निश्चिन्त रहता है क्योंकि उसने लोकवेद सहित अपनी आत्मा अपने प्रभु को सर्व भावेन समर्पण कर दिया है, अस्तु, अन्य की वस्तु में स्वत्व का अभिमान वह कैसे करें।

२- वैष्णव अपनी देह यात्रा के विषय में शोच नहीं करता, प्रारब्धानुसार अवश्यम्भावी होकर ही रहेगी ऐसा उसका विश्वास है। अस्तु सहिष्णु बनकर रहने में ही उसे अपना हित दृष्टिगोचर होता है।

३- वैष्णव देह में आसक्त नहीं होता, वह अपना स्वरूप शरीर से सर्वथा भिन्न और विलक्षण समझता है, अस्तु, जिस किसी प्रकार भी शारीरिक निर्वाह में उसे संतोष रहता है।

४- वैष्णव का भौतिक एवं आध्यात्मिक योग-क्षेम, सर्व-समर्थ भगवान स्वयं वहन करते हैं, इसलिये वह अपनी देह यात्रा की चिन्ता नहीं करता।

५- वैष्णव प्रत्येक परिस्थिति को प्रभु प्रेरणा से प्रभु कृपा प्रसाद भूता अपने कल्याण के लिए प्राप्त हुई समझता है, अस्तु, वह सर्वदा निश्चिन्त बना रहता है,चाहे देह यात्रा का संविधान खट्टा हो या मीठा।

---o---

१७. वैष्णवों के कर्म

१- वैष्णवों के कर्म उनके भगवान के मुखोल्लास-विवर्धक कैंकर्य के रूप में होते हैं। उनके किये गये अनुष्ठानों में स्वसुख की कामना नाम मात्र की नहीं होती।

२- वैष्णव के कर्म प्रभु प्रीत्यर्थ एवं प्रेम के पुट से परिपक्व हरि स्नेह को वृद्धिंगत करने वाले होते हैं।

३- वैष्णव के कर्म कर्तृत्वाभिमान रहित फलाशा के स्पर्श बिना अनासक्ति से केवल कर्तव्य बुद्धि तया होते हैं।

४- वैष्णवों के कर्म प्रभु-प्रेरणा से पर हित साधन के लिये होते हैं, स्वयं उन्हें कर्म करने और न करने से कोई प्रयोजन नहीं रहता।

५- वैष्णवों के वेद-विहित कर्माचरण लोक-वेद संग्रह के लिये केवल लीला रूप से जगत की नाट्यशाला में प्रभु प्रीत्यर्थ होते हैं।

---०---

१८. वैष्णव में अकर्मण्यता का अभाव

१- वैष्णव प्रमाद व आलस का विसर्जन करके भगवदर्थ वेद-विहित कर्मों के सम्पादन में सदा संलग्न रहता है।

२- वैष्णव स्वकर्म के द्वारा भगवदभ्यर्चना किया करता है। जीवन पर्यन्त वह कुशल कर्मों के अनुष्ठान में लगा रहता है, अस्तु उसमें अकर्मण्यता प्रवेश नहीं करती।

३- वैष्णव प्रभु प्रीत्यर्थ कैंकर्य करना अपना सहज स्वरुप समझता है, अस्तु वह अकर्मण्य नहीं होता।

४- वैष्णव कायिक, वाचिक और मानसिक भगवान की सेवा करने ही में विश्रान्ति को पाता है इसलिये वह अकर्मण्यता की ओर नहीं झुकता।

५- किसी अज्ञानी व्यक्ति को अपने से अकर्मण्यता का पाठ पढ़ने को न मिले इसलिये वैष्णव लोक संग्रह के लिये अच्युत भावापन्न होकर तदनुकूल कर्मों के अनुष्ठान में लगा रहता है।

---०---

१९. वैष्णव में धर्म का आवास

१- मूर्तिमन्त धर्म ही वैष्णवीय वेषों को धारण कर धर्माचरण से युक्त वैष्णव के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

करता है, अस्तु वैष्णव धर्मात्मा होते हैं।

३- वैष्णव अधर्म को पीठ देकर धर्म के सदा सम्मुख रहते हैं, इसलिए सभी धर्मों का दर्शन वैष्णवों के आचरण मे ं किया जा सकता है।

४- भगवान के भक्तों में उनके गुण-धर्म स्वाभाविक उतर आते हैं जैसे प्रतिबंध को दूर कर देने से एक खेत का जल दूसरे क्षेत्र में चला जाता है, इसलिए वैष्णव धर्ममय आचरण से युक्त होते हैं।

५- भगवान अपने शरणागत चेतनों को शीघ्र स्वयं धर्मात्मा बना देते हैं, इसलिये वैष्णव धर्म के साक्षात् साकार विग्रह हो जाते हैं।

---०---

२०. वैष्णव में अधर्म का सर्वथा अभाव

१- वैष्णव सात्विक गुण की अधिकता एवं तमोगुण की अत्यन्त न्यूनता से अधर्म में स्वाभाविक प्रवृत्त नहीं होते।

२- सात्विक गुण के मन्दिर, श्रेय गुणों के स्वरूप भगवान के होकर वैष्णव सहज ही अपने को अधर्म से मुक्त हुआ देखते हैं, क्योंकि प्रभु की प्रतिज्ञा है, कि "शरणागत चेतनों को सम्पूर्ण पापों से मैं मुक्त कर देता हूँ।"

३- सद्गुरु के निकट रहकर भागवत धर्मों का अभ्यास करने वाले वैष्णव के मन से कुछ दिनों में पापों की परम्परा के बीज का सर्वथा नाश हो जाता है, अस्तु वैष्णव अधर्म से अलग रहते हैं।

४- सत्संग परायण वैष्णव, संतों की कृपा प्राप्त कर सत्व गुण विशिष्ट संत के स्वभाव वाले बनकर अधर्म के सर्वथा त्यागी बन जाते हैं।

५- वैष्णव पाप के भय से, स्वस्वरूप के हानि के भय से तथा रुचि न उत्पन्न होने से, अधर्म को पीठ दिये रहते हैं।

नोट :- वैष्णव श्रेय गुणों से सर्वदा संयुक्त और हेय गुणों से सर्वथा विमुक्त रहते हैं, क्योंकि उनके भगवान अपने भक्तों को अपनी त्रिसाम्यता प्रदान कर देते हैं।

---०---

२१. वैष्णव में विद्या

१- वैष्णव, वेद शास्त्रीय अर्थ के सार-सिद्धान्त को समझकर तदनुसार आचरण से संयुक्त होता है।

२- वैष्णव रहस्यत्रयी विद्या का विद्वान होता है, जिसे जान लेने पर कोई जानने योग्य तत्व अवशेष नहीं रह जाता।

३- वैष्णव समदर्शिता से संयुक्त प्रत्येक प्राणियों में भवद्दर्शन करता है, अस्तु, वह परम विद्वान होता है।

४- वैष्णव, वेद-वेद्य परब्रह्म परमात्मा भगवान विष्णु के सगुणसाकार और निर्गुण-निराकार रूप का जब अपनी आत्मा में अच्छी तरह अनुभव कर लिया तब उसे कौन सी विद्या प्राप्त करना शेष रह गया।

५- वैष्णव की बुद्धि में जब अत्यन्त सूक्ष्मता आ जाती है, तब वह जो और जब, जैसा जानना चाहता है, तब उस तत्व एवं पदार्थ का तद्रूप ज्ञान उससे अदृश्य नहीं रह सकता, इसलिए वैष्णव विद्या की साकार मूर्ति होता है।

---o---

२२. वैष्णव का कालक्षेप

१- वैष्णवीय-पद्धति से वैष्णवोचित प्रभु प्रीत्यर्थ अनासक्त और कर्तापन के अभिमान से रहित कर्मों का अनुष्ठान करते हुए वैष्णव अपना कालक्षेप किया करते हैं।

२- भगवन्नाम स्मरण, रूप-ध्यान, लीलानुभव और धामनिष्ठा तथा रहस्य त्रयानुसंधान ही से वैष्णव का कालक्षेप होता है।

३- आचार्य के पार्थिव शरीर की सुश्रूषा में रहते हुये उनके रुच्यानुकूल अनुष्ठानों को आचरण में उतारते हुए सद् वैष्णव अपना कालक्षेप किया करते हैं।

४- हरि-चर्चा, हरि-स्तवन, साधु-सेवा एवं सत्संग के साधन की संलग्नता ही वैष्णवों के कालक्षेप की सहायिका है।

५- परहित चर्या को भगवत् सेवा समझते हुए वैष्णव समय का सदुपयोग किया करते हैं।

६- स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपाय स्वरूप, फलस्वरूप और विरोधी स्वरूप के ज्ञानार्जन में वैष्णव का समय व्यतीत होता है।

७- स्वरूप निष्ठ वैष्णव आचार्य के मुखोल्लास विवर्धन हेतु अनुष्ठानों का आचरण करके ही जीवन यापन करते हैं।

८- एकान्तिक वैष्णव भगवान की मानसिक अष्टकालीन सेवा करते हुये प्रेमातिशयता से भगवल्लीला का अनुभव करके कालक्षेप किया करते हैं।

९- परमैकान्तिक वैष्णव भगवत-विरह वेदना को न सहते हुए तदग्नि में जलते ही रहते हैं। अधीरता पूर्ण आह भरी प्रार्थना के साथ अश्रु बहाते हुए उनका सम्पूर्ण समय व्यतीत होता है।

नोट :- उपर्युक्त कालक्षेप की क्रिया वैष्णवों की साध्य स्वरूपा हुआ करती है, साधन स्वरूपिणी नहीं।

---०---

२३. वैष्णव की जीवन-पद्धति

१- वैष्णव की जीवन पद्धति दैवी संपति से संयुक्त अखंड भजन के स्वभाव वाली चिन्ता शून्य होती है। जिसके प्रभाव से वैष्णव अपनी देह-यात्रा एवं आत्म-यात्रा के विषय में निश्चिन्त रहता है, क्योंकि भक्त के दोनों प्रकार के योग क्षेम करने के लिए भगवान स्वयं कटिबद्ध हैं, ऐसा उसका महाविश्वास है।

२- वैष्णव का व्यवहार एवं जीवन-पद्धति श्रुति-शास्त्रानुकूल एवं महज्जनानुमोदित, भागवद्धर्मानुरूप होती है।

३- वैष्णव की जीवन-पद्धति अपनी ऐहिक एवं पारलौकिक कामना से शून्य अपने आराध्य श्री-हरि-गुरु-संत मुखाम्भोज के विकासार्थ होती है।

४- वैष्णव की जीवन-पद्धति में कहीं-कहीं आर्य-पथ के वैपरीत्यता का भी अपवाद रूप में दर्शन होता है, किन्तु जानबूझ कर भक्त के आचरण में यह दोष नहीं प्रविष्ट होता, वरन् विशेष धर्म के उपस्थित होने पर अवरोध करने वाले सामान्य धर्म के विधि-निषेध को शास्त्र स्वयं अपना अनुशासन बावले भक्त के सिर से उठा कर उसे मुक्त कर देते हैं।

५- वैष्णव की जीवन-पद्धति-पर्णशाला शम-दम-सत्संग और विचार रूपी चार स्तम्भों के आधार से सुरक्षित रहती है।

६- वैष्णव की जीवन पद्धति से जगत का कल्याण अपने आप होता रहता है क्योंकि वह परम प्रभावशालिनी, अमृतमयी, और अचिन्त्य शक्ति से सम्पन्न होती है।

७- वैष्णव की जीवन पद्धति से स्थावर और जंगम जगत के किसी भी प्राणी का अहित नहीं होता क्योंकि वह परहित सारिणी और त्रिकरण हिंसा से अत्यन्त दूर रहने वाली होती है।

८- वैष्णव की जीवन पद्धति स्वभावत: दास धर्म से संयुक्त एवं प्रेम पथानुगामिनी होती है।

९- वैष्णव की जीवन पद्धति द्वेष करने वाले के भी अनुकूल और सबको अभय प्रदान करने वाली तथा चन्द्रमा के समान लोक प्रिय होती है।

---o---

२४. वैष्णव का हृदय

१- वैष्णव का हृदय अस्थि मांस से युक्त केवल अवयवी का अवयव ही नहीं होता, वरन् उसके परम प्यारे प्रभु की क्रीड़ा करने की भव्य-भूमि एवं निवास स्थान होता है। जहाँ प्रेम का सरोवर अहर्निशि लबालब भरा हुआ लहराता रहता है, जिससे प्रेम के श्रोत संप्रवाहित होते हुये शरीर प्रदेश को सदा रस सिक्त एवं शीतल बनाये रहते हैं। वह वक्षस्थल वर्णनातीत अनुभव का विषय होता है, उस हृदय से भगवान को क्षणमपि पृथक रहना अशक्य और असम्भव है।

२- वैष्णव के हृदय-सरोवर में विकसित अष्टदलीय कमल उनके इष्टदेव के अष्टयामीय विहार के अनुरूप अष्टकुंज बन जाता है, जिसमें प्रभु की नित्य नव-नव ललित-ललित लीलाओं का उदय और अस्त अनवरत चला करता है।

३-वैष्णवों का हृदय दया का भव्य-भवन होता है। पर-दुख से वह उसी प्रकार द्रवीभूत हो जाता है, जिस प्रकार अग्नि की आँच से मोम।

पर-दुख दूर करने के उपायों का अवलम्बन वह त्रिकरण लेता रहता है। उस उरस्थली में त्रिकाल किसी के अमंगल की भावना का प्राकट्य नहीं होता। आसुरी संपत्ति वाले भी उससे सदा निर्भय ही रहते हैं। अपकारियों के प्रतिशोध की प्रक्रिया का स्मरण वह कभी नहीं करता। उलटे अपराधी के अपराध को क्षमा कर उसे सुख पहुँचाने के लिये प्रयत्नशील बना रहता है।

४- वैष्णवों का हृदय दिव्यातिदिव्य अनेकानेक सद्गुणों का कोष होता है, जिससे जगत समुदाय का भरण-पोषण एवं निस्तारण होता रहता है, फिर भी उसके श्रेयातिश्रेय गुणों में न्यूनता का दर्शन नहीं होता वरन् वह अधिक प्रकाश में आकर अपने आश्रय दाता के कीर्ति का विस्तार करने लगता है।

५- वैष्णवों का हृदय साक्षात् भगवान होता है, या यों कहिये कि भगवान ही भक्तों के हृदय-रूप में परिवर्तित होकर उनके अहंता-ममता का समूल संहार करके स्वयं प्रकाशित होकर अपने प्रकाश का अनुभव जन समुदाय को कराते रहते हैं।

६- वैष्णवों के हृदय देश में अज्ञान का दर्शन उसी प्रकार अलभ्य रहता है, जिस प्रकार सूर्य में अंधकार का।

७- वैष्णवीय हृदय इतना महान व उदार होता है, कि जिसके असीमित उदारता में चराचर जगत समाया रहता है और जहाँ से सभी जीवों के कल्याण की कामना साकार बनकर प्राणिमात्र को सुख पहुँचाने में सदा संलग्न रहा करती है।

---0---

२५. वैष्णव की दृष्टि

१- वैष्णव की दृष्टि में यह स्थावर-जंगम जगत विष्णुमय दिखाई देता है, घट-घट में उसकी दृष्टि अपने व्यापक ब्रह्म का दर्शन करती है। वास्तविक में यही दृष्टि सत्य से ओत-प्रोत है, जिस प्रकार कलश में मृत्तिका एवं पट में सूत्र सब ओर से व्याप्त है, उसी प्रकार जगत में ब्रह्म ! यदि जगत और ब्रह्म को एक दूसरे का पर्यायी कह दें तो कोई अनर्थाभास होने की संभावना न होगी, ऐसा अपना निश्चय है।

२- वैष्णवों की दृष्टि एकता का दर्शन करके समता से संयुक्त होती है। जिसमें मैं-तू और मेरे-तेरे का सर्वथा अभाव हो जाता है।

३- वैष्णवों की दृष्टि प्रियकर, सरस, सुखद और प्रेम से परिपूर्ण होती है, जिसमें आत्मीयता के भावों की भावना संन्निहित रहती है।

४- वैष्णवता से सुसज्जित वैष्णव करुणा-कृपा से पूर्ण अपनी दयामयी दृष्टि से जहाँ-जहाँ देखता है, वहाँ-वहाँ कल्याण का स्थान बन जाता है।

---०---

२६. वैष्णव का तन

१- वैष्णव-शरीर, वैष्णव-वेष अर्थात् ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, गले में तुलसी की कण्ठी, बाहु में भगवान के आयुधों को अवधार्य, राजहंस की तरह शोभा से सम्पन्न होकर संसार में पूजित होता है।

२- वैष्णव-शरीर, वैष्णव-तेज से दैदीप्यमान, चित्त को आकर्षित करने वाला कोमल, कमनीय एवं सुगंध से संयुक्त परम पवित्र होता है। वह जिसका स्पर्श कर लेता है, वह पावन बनकर प्रभु प्रेम का पुजारी व अधिकारी हो जाता है।

३- वैष्णव का शरीर श्री-गुरु-संत और हरि की सादर सेवा करने में निरत रहता है उसे बिना कैंकर्य अपनी साफल्यता नहीं प्रतीत होती उसमें प्रभु प्रेम का प्रकाश (सात्विक भावों का उदय होन) होता रहता है।

४- वैष्णव का शरीर भजनीय प्रभु के भजन का परम सहायक होता है, क्योंकि बिना तन के भगवत भजन बन नहीं सकता, यह वेद का निर्णय है।

५- वैष्णव का तन भगवान से आदरणीय होता है, प्रभु अपने जनों के आत्मा का आदर उनके देह सहित करते हैं, जैसे उशीर (खस) के सुगंध सेवी सज्जन, उसकी जड़ को मिट्टी सहित स्वसमीप में रखते हैं। कभी-कभी यह स्पष्ट देखा गया है कि वैष्णव का स्थूल शरीर भी भगवान में संप्रवेश कर गया या प्राण-प्रयाण समय में सबके देखते-देखते अदर्शित हो गया।

२७. वैष्णव की इन्द्रियाँ

१- वैष्णव की कर्मेन्द्रियाँ भगवत कैंकर्य करने की स्वभाव वाली बन जाती हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ भी भव-रस के आहार का परित्याग कर भगवत-रस की रसिकिनी हो जाती हैं।

२- वैष्णव की ज्ञानेन्द्रियाँ इतनी सूक्ष्म हो जाती हैं कि बाह्य-विषय-सापेक्ष नहीं रहतीं। वे अन्तरमुखी होकर अपने-अपने विषय को दिव्यता के साथ दिव्य शब्दादि विषयों का सेवन कराती हैं।

३- वैष्णव की इन्द्रियाँ ईश्वराभिमुख्यता को ग्रहण कर आत्मा के उत्कर्ष का सम्पादन किया करती हैं।

४- वैष्णव की इन्द्रियों को भव-रस उतना ही अरुचिकर लगता है जितना कि मनुष्य को उल्टी किया हुआ अन्न।

५- वैष्णव के इन्द्रियों के देवता जिनके हृदय में विषय भोग की अत्यन्तासक्ति होती है, वैष्णव की इन्द्रियों को भव-विषय वाहिनी बनाने में असमर्थ ही रहते हैं।

---०---

२८. वैष्णव का मन

१- वैष्णव का मन, अचंचल और आत्मा का मित्र होता है।

२- वैष्णव का मन, मन-मोहन भगवान से अत्यन्त मोहित रहता है।

३- वैष्णव का मन, परमार्थ सेवन करते-करते परमार्थ रूप ही हो जाता है।

४- वैष्णव का मन, इन्द्रियों को वैष्णवीय आहार के सुखद स्वाद का अनुभव कराकर उनके विषय प्रावण्य को प्रनष्ट कर देता है।

५- वैष्णव का मन, भगवदर्पित होता है, अस्तु, वह भगवान के संकेत से ही मनन करता है। इन्द्रियों को हृषीकेश के रुच्यानुकूल कार्यों के करने की प्रेरणा देता है।

---०---

२९. वैष्णव की बुद्धि

१- वैष्णव की बुद्धि, ऋतम्भरा-प्रज्ञा पद पाने के पश्चात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाती है जिससे वैष्णव स्वस्वरूप, परस्वरूप का अपरोक्ष दर्शनानुभव और ज्ञान कर लेता है।

२- वैष्णव की बुद्धि भगवत-भागवत तत्व के विमर्श में ही लगी रहकर उसी परमार्थ तत्व में विलीन हो जाती है।

३- वैष्णव की बुद्धि-बालिका भगवान को पति रूप में वरणकर पतिव्रत धर्म को निभाने वाली अनन्या हो जाती है।

४- वैष्णव की बुद्धि जड़ और चेतन तत्व की सर्वथा पृथकता का ज्ञान, विष्णु-भक्त के चित्त पटल पर अमिट अंकित करके आत्म शक्ति की सिद्धियों का प्रवाह प्रगट होते हुए भी उसमें भागवत को बहने से बचाती है।

५- वैष्णव की बुद्धि स्वयं सच्चिदानन्द में विलीन होकर भगवद्भक्त को सच्चिदानन्दमय बना देने पर ही कृत-कृत्य होती है।

---o---

३०. वैष्णव की आत्मा

१- वैष्णव की आत्मा परमात्मा का सहज शेषत्व ज्ञान प्राप्त करके ही परम तृप्ति का अनुभव करती है।

२- वैष्णव की आत्मा भगवान के दिव्यातिदिव्य गुणों का अनुभव करके प्रेमातिशयता का परम सुख से आस्वाद लेती है।

३- आत्माराम भगवान ज़ब भक्त की आत्मा में रमण करने लगते हैं, तब वैष्णव की आत्मा आनन्दित होती है।

४- भगवान का असीम सौन्दर्य, सौकुमार्य और माधुर्यादि देह संपत्तियाँ जब वैष्णव को प्रत्यक्ष अनुभव में आती हैं, तब उनकी आत्मा आनन्दमय हो जाती है।

५- सहज दास भूत वैष्णव को जब स्वसम्बन्धानुसार परम पुरुषार्थ स्वरूप भगवत कैंकर्य की प्राप्ति एवं प्रभु के परम स्नेह की प्राप्ति हो जाती है तब आत्मा को स्थाई चरम सुख की उपलब्धि होती है।

३१. वैष्णवीय अभिलाषा

१- वैष्णवों का चित्त चिन्ता शून्य, चित-चोर चतुर चिन्तामणि के चिन्तन में निमग्न रहता है, जिससे जगत का सर्वदा सर्वथा अभाव बना रहता है, अस्तु उसमें भौतिक अभिलाषाओं का स्वप्न में भी उदय न होना स्वाभाविक है। केवल प्रभु प्राप्ति की अभिलाषा अनवरत बनी रहती है।

२- वैष्णव के अन्तराल में अपने इष्ट देव के दर्शन की अभिलाषा एवं प्रेम पूर्ण अकारण कैंकर्य करने की लिप्सा पूर्णतया अबाधित वास किया करती है।

३- वैष्णव अपने लिये स्वयं कुछ नहीं चाहता पर भक्त और भगवान के मंगलानुशासन में सदा संलग्न रहकर उनके ऐहिक और पारमार्थिक कल्याण की कामना किया करता है।

४- वैष्णव अपने दु:खों की परवाह न कर उसके निवृत्ति के लिये कोई उपाय और कामना नहीं करता, परन्तु जगज्जीवों के कष्ट को न सहता हुआ उनको क्लेश-विमुक्त देखने की इच्छा करता है।

५- सम्पूर्ण कामनाओं से हीन वैष्णव-हृदय में बिना आमंत्रण एवं प्रयत्न के सम्पूर्ण सद्गुण स्वयं आकर अपना निवास स्थल बना लेते हैं और समय-समय पर अपने आप प्रकाशित होते रहते हैं, तब लोग समझते हैं कि इस समय इस वैष्णव के हृदय में यह इच्छा उत्पन्न हो गई है, जैसे किसी रोगी को देखकर किसी वैष्णव के हृदय में दया-गुण के उदय हो जाने पर औषधादि से वह उस दुखी की सेवा करने लगता है अर्थात् दीन-दुखी की सेवा करने की अभिलाषा सी दिखाई देने लगती है, वास्तविक में उसे कोई किसी प्रकार की अभिलाषा ने वरण ही नहीं किया क्योंकि वह अपने को कर्ता, कारयिता, रक्षक और भोक्ता भूलकर भी नहीं मानता। उसे तो अपने प्यारे का पगला प्रेम चाहिये। प्रियतम का कैंकर्य, उन्हीं के सुख के लिये स्वसुख की इच्छा का त्याग कर, करता रहे इसके अतिरिक्त उसे कुछ न चाहिये।

---o---

३२. वैष्णव का त्याग

१- वैष्णव, अपने प्रभु की अप्रियता और प्रतिकूलता उत्पन्न करने वाले व्यवहारों को सर्वथा हेय द्रृष्टि से देखता है। वह भगवान के अनुकूल आचरण को धर्म, भजन एवं कैंकर्य समझते हुए, प्रतिकूल कर्मों को पाप समझकर परित्याग किये बिना नहीं रहता।

२- प्रथम कोटि के वैष्णव त्यागने योग कर्मों को पाप समझकर त्याग करते हैं, मध्यम कोटि के वैष्णव प्रतिकूल आचरणों से अपने स्वरुप की हानि समझकर सर्वथा उनका परित्याग कर देते हैं। उत्तम कोटि के वैष्णवों में निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान की रुचि ही नहीं उत्पन्न होती।

३- वैष्णव अकृत करण, भगवत अपचार, भागवतापचार और असह्यापचार को कभी मन से भी स्मरण नहीं करते। क्रिया में तो उनका आना सदा असम्भव ही है।

४- वैष्णव स्वयं अपने को भगवान का भोग्य समझता है इसलिये उसमें विषय एवं विषय सेवन की उपकरण सामग्रियों की कामना का त्याग सर्व-देश-काल में बना रहता है।

५- वैष्णवों में स्वसुख की कामना का सर्वथा अभाव रहता है। वे अपने भगवान के सुख को ही अपना सुख समझते हैं, इसलिये उनमें लोक-परलोक (स्वार्थ-परमार्थ) के सुखों की चाह का न होना सहज और स्वाभाविक है। वे दीयमान भुक्ति और मुक्ति के सुखों की तरफ मुख भी नहीं फेरते। उन्हें अपने इष्ट के अविरल प्रेम पूर्ण कैंकर्य के अतिरिक्त और कुछ न चाहिये। वे स्वयं अपने मैं और मेरे का सादर समर्पण भगवच्चरणों में किये रहते हैं।

६- वैष्णव अपने भगवान के प्रेम मे भरकर लोक-वेद के व्यापार का सुचारु रूप से पालन करने में असमर्थ हो जाते हैं, इसलिये वेद के विधि-निषेध उन बावले भक्तों से अपना शासन उठा लेते हैं, अस्तु, भागवतों को सामान्य धर्म का त्याग करना नहीं पड़ता वरन् वे कर्म अपने आप अलग हो जाते हैं।

७- वैष्णव से स्वभावत: जो कर्म संकल्प विहीन आसक्ति रहित होते हैं, उन कर्मों के करने से कर्तापन का सदा अभाव और फलाशा का त्याग सहज सन्निहित रहता है।

८-वैष्णवों की सारी चेष्टायें भगवदर्थ होती हैं, अस्तु उन सम्पूर्ण कर्म की क्रियाओं में स्वसुख के त्याग का होना स्वाभाविक और सरल है।

९- वैष्णव इच्छानिच्छा एवं ग्रहण-त्याग के आग्रह के त्यागी होते हैं। वे अनुकूल के प्राप्ति में हर्ष का और प्रतिकूल के प्राप्ति में विषाद का परित्याग सहज ही किये रहते हैं।

१०- वैष्णव अनन्य प्रयोजन वाले होते हैं अर्थात अन्य प्रयोजन की कामना से उनका हृदय प्रतप्त और कलुषित नहीं होता। एक मात्र उन्हें भगवान एवं उनके प्रेम की तीव्रतम चाह ने वरण किया है।

---०---

३३. वैष्णव का वैराग्य

१- अपने भगवान में अत्यन्त आसक्ति एवं राग ही निश्चय वैष्णव का वैराग्य है, जिससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष से वह वितृष्ण ही नहीं हो जाता वरन् इनका अस्तित्व ही अपने में नहीं रखता। वह सार्वभौम की सत्ता का स्वामी नहीं बनना चाहता। उसे रसातल की भोग सामग्रियाँ भी नहीं चाहिये। इन्द्र और ब्रह्म पद की प्राप्ति की कामना को सर्वथा हेय समझकर परित्याग कर चुका है वह, योग की सिद्धियों को भी उसने प्रकृति में प्रतिष्ठित जान जवाब दे दिया है। उस परम भागवत को केवल भगवद्धाम में निवास करते हुए प्रेम पूर्ण भगवत कैंकर्य करना ही अभीष्ट रह गया है।

२- भगवान के स्वाभाविक सौंदर्य का अनुभव तथा कृपाप्ति और आचार्यानुमोदित सदाचार का आचरण वैष्णव को परम विरक्त बनाकर ही स्थित रहता है।

३- पंच विषयों का दु:ख-दोषानुदर्शन एवं स्वस्वरूप-परस्वरूप का अप्राप्तिजनक भय, वैष्णव को विषय-वितृष्ण कर परम विरक्त बना देता है।

४- संसारियों एवं संसार को विवर्धन करने वाली वस्तुओं से वैष्णव महा विरक्त होते हुये भगवत अनुरागियों से अत्यन्त अनुरक्त होता है। प्रभु प्रेम को वृद्धिंगत करने वाले जड़ एवं चैतन्य के संगवारि का प्यासा ही बना रहता है।

५- अपने देह-यात्रा के योग क्षेम से वैष्णव विरति तो रखता है किन्तु निकटवर्ती किसी भी प्राणी के अभाव की पूर्ति के लिये वह चेष्टित-सा दिखाई देता है।

---०---

३४. वैष्णव का ज्ञान

१- चिद्-अचिद् और ईश्वर (तत्व त्रय) के ज्ञान वाला वैष्णव होता है।

२- रहस्य त्रयी विद्या का विद्धान वैष्णव, मूल मंत्र, मंत्र द्वय और चरम मंत्र का पूर्णतया ज्ञान रखते हुये उनमें अपना अधिकार रखता है अर्थात् स्वरूपनिष्ठ होता है।

३- वैष्णव अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व, और अनन्य शरणत्व संपत्ति से सम्पन्न होता है अर्थात् इन अकार त्रय का ज्ञान भली-भाँति रखते हुये तदरूप होता है।

४- वैष्णव, अष्टाक्षर शरणागति मंत्र का यथात्म ज्ञानी बनकर प्रभु कृपा को ही इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की निवृत्ति का हेतु समझता है।

५- सम्पूर्ण भागवत धर्मों का ज्ञान वैष्णव का ज्ञान है। भागवतीय धर्म के अतिरिक्त उसके लिये सब अज्ञान है।

६- वैष्णव अर्थ-पंचक तत्वज्ञ होकर स्वस्वरूप निष्ठ होता है।

---०---

३५. वैष्णव की भक्ति

१- ऋषि-मुनि-देव-दुर्लभा वैष्णव की भक्ति उपायतया न होकर अपने भगवान के विषय में प्रेम स्वरूपा एवं अकार त्रय सम्पन्ना, अनन्यता लिये हुये अमृतमयी होती है।

२- वैष्णव की श्रवणादि नवधा साधन भक्ति भी साध्य का स्वरूप धारण कर लेती है अर्थात् प्रेमातिशयता से प्रभु-चरित्र श्रवण किये बिना एवं चन्द्रकीर्ति की चरित चन्द्रिका का रसास्वाद लिये बिना भक्त के कर्ण और मुख अतृप्त ही बने रहते हैं, वह लीला रस का रसिक इस प्रकार हो

जाता है, जैसे जल का मत्स्य, अस्तु वैष्णव की भक्ति भगवान के गुण-गणानुभव के रसानुभव के लिये होती है।

३- वैष्णव की भक्ति अपने भगवान का भजन करते-करते भक्त को भगवत अपनत्व की पराकाष्ठा में पहुँचाकर स्वयं रागानुगा नाम से सम्बोधित होने लगती है।

४- वैष्णव की भक्ति अत्यन्तासक्ति द्वारा चरमावस्था को प्राप्त कर पराभक्ति के नाम से पुकारी जाने लगती है जहाँ भक्ति, भक्त और भगवान की त्रिपुटिका का भंग हो जाता है। ऐसी स्थिति में कान्तादि रसों का भान भी जाता रहता है।

५- वैष्णव की भक्ति स्वतंत्रतया अलग से कर्म-ज्ञान और योगादि अनुष्ठानों की अपेक्षा नहीं रखती किन्तु कर्म-ज्ञान और योग अपने फलों सहित अपने स्वरूप की साफल्यता समझते हुए भक्ति-देवी के दासता की लालसा से सराबोर होकर सदा अनुगमन किया करते हैं। जिस भक्ति को पाकर भक्त कृतकृत्य होकर तृप्त और अमृतमय हो जाता है।

६- वैष्णव की भक्ति भगवदनुकूलता तथा तद् विरोधी वर्ग में उदासीनता ग्रहण किये हुए अहंकार-ममकार शून्य होती है।

७- वैष्णव की भक्ति उपायोपेयाकार वाली होती है अर्थात् वैष्णव, भगवान की भक्ति, भक्ति विवर्धन के लिये ही करता है।

८- वैष्णव की भक्ति भगवत विस्मरण को न सहती हुई परम व्याकुलता को धारण करने वाली होती है। इसमें सर्वात्म समर्पण "तत् सुख सुखित्वम्" की भावना और अपने प्रभु के माहात्म्य का ज्ञान सहज ही सर्वभावेन संनिहित रहता है।

९- वैष्णव की भक्ति भगवान के नाम, रूप, लीला और धाम का सदा सेवन करने वाली और प्रभु कैंकर्य को ही परम पुरुषार्थ समझने वाली होती है।

---o---

३६. वैष्णव का अनुराग

१- वैष्णव का अनुराग अहैतुक और अहर्निशि अनुराग विवर्धन के लिये ही होता है।

२- वैष्णव का अनुराग सर्वभावेन आत्म समर्पण कर देने में ही अपनी उपयोगिता का अनुसंधान करके कृतकृत्य होता है।

३- वैष्णव का अनुराग अपने इष्ट देव के आनन्दमय मुखोल्लास का अवलोकन कर प्रतिक्षण वृद्धिंगत होता रहता है।

४- वैष्णव का अनुराग अपने प्रभु के किंचित विस्मरण को न सहता हुआ विरह-वेदना के रूप में परिणित हो जाता है।

५- वैष्णव का अनुराग उत्तरोत्तर प्रेम की उच्च स्थितियों को पार करता हुआ प्रेमी, प्रेमास्पद और प्रेम की त्रिपुटी को भंग करके पराभक्ति एवं परमानन्द के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

---o---

३७. वैष्णव में रसोपासना

१- ब्रह्म ही रस और रस ही ब्रह्म है। रस की प्राप्ति ही परमानन्द की प्राप्ति है, अस्तु वैष्णव पूर्ण रूपेण रस का परिज्ञान रखते हुये परम रसिक बने रहते हैं क्योंकि भक्ति का पर्यवसान रसमय बन जाने में ही है।

२- रागात्मिका-भक्ति ही रसात्मिका है। वैष्णव प्रभु प्रेमाधिक्य के कारण भगवान की सौन्दर्यता और माधुर्यता में जब प्रवेश करते हैं तब ऐश्वर्यता का भान भली-भांति भग जाने के कारण श्रृंगारादि रसों का भाव-भानु उनके हृदय में उदय हो जाता है। अस्तु, वैष्णव परम रसिक बन जाते हैं। जैसे :- दण्डकारण्य के महर्षिगण।

३- बिना अपनत्व के प्रेम की चरम स्थिति का दर्शन कोई भी नहीं कर सकता, इसलिये वैष्णव प्रेमापरा भक्ति के प्राप्त्यर्थ भगवान को अपना पुत्र, स्वामी, सखा, भर्ता इत्यादि मानकर रसोपासना करने लगते हैं।

४- जीव का ईश्वर के साथ नव प्रकार का निरागन्तुक सहज सम्बन्ध है जो स्वस्वरूप और परस्वरूप के अनुकूल है। इस प्रकार के दृढ़ ज्ञान से संयुक्त वैष्णव, रसोपासना पद्धति को स्वरूपतया अपना लेते हैं।

५- हृदय-प्रधान वैष्णवों को स्वयं प्रभु रस-पद्धति से मिलने में ही आनन्द का अनुभव करते हैं, इसलिये वे अपने उस भक्त की उरस्थली में उसी सम्बन्ध का स्फुरण उत्पन्न करते हैं, जिस सम्बन्ध-रस का उन्हें आस्वाद लेना होता है, अस्तु वे वैष्णव रुच्यानुकूल रस-पाक-प्रक्रिया से अपने भगवान का भोग्य बन जाना ही परम पुरुषार्थ समझते हैं।

नोट :- रसोपासना की सिद्धि स्थिति में परमानन्द की अनुभूति, अखण्डैक ज्ञान, रसोवैस: का अनुवर्तन, तत्सुख सुखित्वम् की स्थिति, तदीयता, नव-नव रस वार्धक्यता और प्रेम की उत्कर्षता स्वाभाविक नित्य विद्यमान रहती है।

---o---

३८. वैष्णव की अनन्यता

१- विष्णु पद वाच्य एक परब्रह्म सब ओर से व्याप्त हो रहा है, व्याप्य भी वही व्यापक भी वही, उससे अतिरिक्त किंचित भी अन्य वस्तु के भाव का अभाव ही त्रिभुवन में प्रतिष्ठित है। अर्थात सारे के सारे संसार को भगवत स्वरूप समझना वैष्णव की अनन्यता है।

२- देवतान्तरों के शेषत्व एवं साधनान्तरों के आश्रय का परित्याग (अर्थात् भगवान के आश्रय को ग्रहण कर अन्य आश्रय का न्यास) वैष्णव की अनन्यता है।

३- वैष्णव की अनन्यता में, अपने भगवान में प्रीति-प्रतीत और सुरीति के साथ भक्ति-भावना तो वृद्धिंगत होती जाती है, किन्तु अन्य देवों और साधनों से द्वेष नाम मात्र नहीं होता। पतिव्रत धर्म परायणा पत्नी की भाँति वैष्णव की अनन्यता है।

४- सर्वशेषी, सर्वभोक्ता और सर्वरक्षक अपने भगवान को समझना जो सर्व श्रुति शास्त्र संमत और सद्गुरु-संतानुमोदित है, वैष्णव की अनन्यता है।

५- भगवान की अहैतुक कृपा को ही उपायोपेय समझकर अहर्निशि प्रभु कृपा की बाट जोहते हुए अकिंचनत्व, अन्यागतित्व और आर्तित्व वृत्ति से कालक्षेप करना ही वैष्णव की अनन्यता है।

---o---

३९. वैष्णव का अभिमान

वैष्णव मदीयत्व तथा तदीयत्व भाव से भावित होकर भावना करता है कि मैं भगवान का सहज शेष भूत दास एवं भोग्य हूँ। वे मेरे सहज शेषी, स्वामी और भोक्ता हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय के साथ तदनुसार वृत्ति वाला होना वैष्णव का अभिमान है।

---o---

४०. वैष्णव में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहं का अभाव

१- वैष्णव में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व और ज्ञातृत्व अहंकार का अत्यन्ताभाव होता है।

२- वैष्णव में देहाभिमान का (अर्थात् शरीर में आत्मबुद्धि का, देह सम्बन्धी वस्तुओं में ममत्व बुद्धि का और शरीरान्तर में दिव्य-देहोपलब्धि की इच्छा का) सर्वथा अभाव होता है।

३- वैष्णव में स्वस्वरूपाभिमान नहीं होता (अर्थात् देह-दृष्टि रहने पर आत्मा को अनादर भाव से नहीं दर्शन करता और न आत्म-दर्शन में शरीर से घृणा करता) वह जड़-चेतन समुदाय को भगवान का शरीर समझता है, अपने स्वरूप को भगवत स्वरूप के भीतर ही दर्शन करता है, अपना अलग अस्तित्व नहीं मानता।

४- वैष्णव उपायाहंकार बिना ही कर्म, ज्ञान, योग, भक्ति और प्रपत्ति का अनुष्ठान किया करता है। उपर्युक्त साधनों में उसकी उपाय बुद्धि नहीं होती। इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट निवृत्ति में वह भगवान कृपा को ही उपाय मानता है अर्थात् प्रभु स्वयं उपायोपेय हैं, यह उसका यथात्म दृढ़ निश्चय होता है।

५- वैष्णवों में उपेयाहंकार का सर्वथा अभाव होता है। "मैं भगवत कैंकर्य परायण हूँ" का अहं अपने में नहीं प्रवेश करने देते। जिस प्रकार अंग अंगी के सुख के लिये, अंगी के रुख को पहचान कर अंग सेवा करते हैं, बिना अभिमान के। (जैसे हाथ बिना अहं के सिर को खुजला देता है।) उसी प्रकार वैष्णव जन निरभिमान प्रभु कैंकर्य किया करते हैं।

६- वैष्णव में अहं के न होने का भी अहंकार नहीं होता।

---o---

४१. वैष्णव में राग-द्वेष का अभाव

१- वैष्णव की दृष्टि में जब कोई अपना और पराया ही नहीं तो वह राग-द्वेष किससे करे। अस्तु वैष्णव राग-द्वेष विहीन होता है।

२- जब वैष्णव को घट-घट में बैठे हुये उसके प्रभु ही दृष्टिगोचर होते हैं, तो वह द्वेष किससे करे। अस्तु वैष्णव द्वेष रहित होता है।

३- वैष्णव को जब किसी प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति से प्रतिकूलता आभासित होती है तो वह उसकी प्रतिकूलता में अपने पाप के परिणाम को एवं अपनी परिस्थिति सुधारने के लिये प्रभु प्रेरणा को हेतु समझता है, अस्तु किसी प्राणी पदार्थ और परिस्थिति से द्वेष नहीं करता।

४- वैष्णव किसी से द्वेष करना परमात्मा से ही द्वेष करना समझता है क्योंकि सर्वभूतों में अन्तर्यामी रूप से भगवान ही प्रतिष्ठित हैं, ऐसा उनका दृढ़ ज्ञान है। प्रतिकूल व्यवहार करने वाले प्राणी को भवरोगी समझकर उल्टे उसके कल्याण की कामना करने लगता है।

५- वैष्णव, जगत के परिवर्तनशील असत् अविद्यामय स्वरूप को समझकर उससे उदासीन रहता है, अस्तु वह राग-द्वेष विहीन होता है।

६- वैष्णव राग और द्वेष को बन्धन समझकर उससे सर्वत्र और सदा पृथक रहता है।

७- वैष्णव के हृदय में जब अहंकार का अभाव हो गया, और ममता की मृत्यु हो गई, तो बिना जननी-जनक के राग-द्वेष का प्रसव कहाँ से हो।

---o---

४२. वैष्णव की ममता

१- भगवान हमारे हैं, भगवान का सुख हमारा सुख है, भगवान की वस्तु हमारी वस्तु है, किन्तु है उन हमारे प्रभु के भोग के लिये, यही वैष्णव की ममता है।

२- श्री हरि के अनन्तानन्त सौन्दर्य, सौशील्य, सौलभ्य और वात्सल्यादि दिव्य गुण-गणो के सहित उनका परत्व हमारे अनुभव के लिये है, यही विष्णु भक्तों का ममत्व है।

---o---

४३. वैष्णव में ममत्व बुद्धि का सर्वथा अभाव

१- वैष्णव में जब अहंकार को आश्रय ही अप्राप्य रहा तो ममकार कहाँ से उद्भूत हो क्योंकि कारण के बिना कार्य अदृश्य ही रहता है।

२- वैष्णव "ममेति मृत्युः" समझकर ममत्व से जब मन को पृथक

कर लिया तब ममता अपने आप अपना आश्रय न पाकर वैष्णव के चित्त से चली गई, 'अस्तु' वह निर्मम बन जाता है।

३- जब वैष्णव ने अपनी आत्मा और आत्म-सम्बन्धी लौकिक-परालौकिक वस्तुओं को अपने भगवान के लिये सर्वभावेन समर्पण कर दिया तो ममत्व होने की शंका का समावेश ही नहीं होता।

४- जब वैष्णव को यह अडिग और अपरिहार बोध हो जाता है, कि यह सारा का सारा संसार मैं और मेरे के समेत वैष्णवीय है, तो ममता के लिये अवकाश ही कहाँ।

५- जब वैष्णव अपने भगवान के अतिरिक्त जग-त्रय में किंचित वस्तु का दर्शन ही नहीं करता तो ममता कहाँ से प्रादुर्भूत हो अस्तु वैष्णव सहज ही निर्मम होते हैं।

---o---

४४. वैष्णव में नैच्यानुसंधान

१- वैष्णव अपने को तृण से भी नीच समझता है, क्योंकि उसके भगवान का स्वरूप चराचर संसार है और वह सहज ही अपने स्वामी का सेवक है।

२- वैष्णव अपने इष्ट के अप्राप्ति में अपने अनंत जन्मों के अर्जित अपराधों को ही कारण समझता है अर्थात् प्रभु प्राप्ति में पाप ही प्रतिबंधक है ऐसी उसकी मान्यता हो जाती है, अस्तु, अपने पापों का अनुसंधान कर-करके वह अपने को नीचातिनीच समझने लगता है।

३- वैष्णव की सहज दैन्यता, नम्रता और विनयशीलता नैच्यानुसंधान के अनुरूप वैष्णव जीवन का निर्माण करती है।

४- वैष्णव की दृष्टि अपने से सबको श्रेष्ठ और प्रभु कृपाका अधिकारी समझने लगती है अतएव भक्त में नैच्य भाव का आना स्वाभाविक है।

५- वैष्णव में अकिंचनत्व, आर्तित्व और अनन्यगतित्व की दशायें उत्पन्न होकर सहज ही वैष्णव को नैच्यानुसंधान में संलग्न कर देती है, अस्तु, वह अपने को अत्यन्त नीच समझने लगता है।

४५. वैष्णव में अमानित्व भाव

१- वैष्णव जड़-चेतनात्मक जगत में सर्वत्र अपने इष्ट का दर्शन करते हुये अपने अहं को सर्वभावेन खो बैठते हैं। उन्हें मान ग्रहण करने की इच्छा कैसे वरण कर सकती है, अहं के बिना ग्रहण भी कौन करे।

२- वैष्णव मान को सुरापान, प्रतिष्ठा को सूकरी विष्ठा और गौरव को रौरव नरक के समान दु:खप्रद समझकर सर्वथा परित्याग कर देते हैं।

३- वैष्णव जन, जब सचराचर जगत का सेवक स्वयं को समझ लिये, तो वे किससे मान पाने की इच्छा करें। उन्हें तो सबको मान देना ही रुचिकर होता है।

४- वैष्णव स्वरूप निष्ठ द्वन्द्वातीत होते हैं। जब उन्हें कोई कामना ही नहीं तो तुच्छ क्षणिक मान-सुख की इच्छा ही वे क्यों कर करें।

५- देहाभिमान से निवृत्ति हो जाने पर एवं आत्म स्वरूप को प्रभु से पृथक अस्तित्व न पाकर, वैष्णवों में अमानित्व का विकास होना सहज है।

६- यदि वैष्णवों को कहीं प्रतिष्ठा की प्राप्ति देखी जाती है तो वह उनकी इच्छा से नहीं, प्रत्युत उनके प्रभु की दी हुई प्रसादी होती है, उसे भी वैष्णव अपने इष्ट को अर्पण करके स्वआदर को भगवान का आदर समझ अनासक्त होकर उससे अलग ही रहते हैं।

---o---

४६. वैष्णव में मान प्रदातृत्व भावना

१- वैष्णव घट-घट में अपने परम प्रभु का दर्शन करता है, अस्तु सभी को मान प्रदान करना उसके स्वभाव में उतर आता है।

२- वैष्णव जब अपने को तृण से भी नीच समझने लगता है, तो सबको सम्मानित करना उसका सहज स्वभाव बन जाता है।

३- वैष्णव सभी भूतों में प्रतिष्ठित भगवान की पूजा करने के लिए सम्मान को ही आगे रखता है।

४- सबको सम्मान देकर ही वैष्णव अपने अहं के खोने में अग्रसर होता है।

५- सबकी (जनता जनार्दन) प्रसन्नता एवं कृपा प्राप्त करने के लिये, वैष्णव सबको सम्मान समर्पण करने को ही, हेतु समझता है।

६- वैष्णव दूसरों को सम्मान न देना अपचार समझता है।

७- विष्णु की अनुकूलता सबको सम्मान देने से होगी निर्भ्रान्त, वैष्णव का दर्शन है।

---o---

४७. वैष्णव में क्षमा

१- वैष्णव अपराध करने पर भी अपराधी को प्रतिकूलता प्रदान करने वाला व्यक्ति विशेष नहीं मानता वरन् अपने पाप कर्मों के परिणाम को कारण रूप में स्वीकार करता है, अस्तु उसके प्रति वैष्णव के हृदय में क्रोध की भावना ही नहीं उत्पन्न होती क्योंकि सहज क्षमा से वह ओत-प्रोत रहता है।

२- वैष्णव इष्ट-अनिष्ट के प्राप्ति में सदा सर्वदा सम रहता है इसलिये हर्ष और विषाद से ग्रस्त न होकर प्रतिकूल व्यवहार करने वाले को अपनी क्षमा शीलता का ही परिचय देता है।

३- वैष्णव किसी प्राणी को कर्ता कारयिता नहीं स्वीकार करता। वह किसी अदृश्य को ही प्रतिकूलता का प्रदाता समझता है। इसलिये क्षमा युक्त होना उसका सहज स्वभाव होता है।

४- बुद्धिमान् वैष्णव, जीव समुदाय में अपने समेत किसी को बिना अपराध के नहीं देखता, अस्तु, संत-स्वभाव से क्षमावान होना ही वैष्णव का सौन्दर्य है।

५- वैष्णव किसी में दोष का दर्शन ही नहीं करता वरन् पर दोष-दर्शन में अपने दोष को ही कारण मानता है, अस्तु, क्षमायुक्त होना उसका सहज स्वरूप है।

६- वैष्णव को भगवान की कृपा से क्षमा-गुण-प्रसाद जब मिल जाता है, तो उसमें क्षमा का निवास होना स्वाभाविक है।

७- वैष्णव जब परमार्थ में स्थित हो जाता है, तब सभी प्रकृति के कार्यों को मोह-मूल समझकर परित्याग कर देता है, फिर उसे संसार का

दर्शन सदा के लिये अलभ्य हो जाता है, अस्तु क्षमादि गुण सहज ही में अपना आगार बनाकर भक्त के हृदय में बसने लगते हैं।

---०---

४८. वैष्णव में दया

१- वैष्णव दयानिधान भगवान का भक्त होता है, अस्तु इष्ट के दयादि-गुण-गणों का दर्शन श्री हरि-भक्तों के हृदय में होना उनके अनुरूप ही है।

२- वैष्णव का हृदय किसी के भी दुख को देखकर द्रवीभूत हो जाता है, क्योंकि आत्मवत सर्व भूतों को मानने के स्वभाव वाला होने से उसे दया वरण किये रहती है।

३- वैष्णव सम्पूर्ण प्राणिवर्ग के कल्याण की कामना रखता हुआ सभी का मंगलानुशासन करता है, अस्तु, अपने इच्छा के प्रतिकूल किसी के कष्ट को देखकर दया से भर जाना उसका सहज स्वभाव होता है।

४- वैष्णव का विग्रह धर्ममय होता है, दया सभी धर्मों में श्रेष्ठ है, अस्तु, दु:खी को देख दया से भर जाना वैष्णव का सहज धर्म होता है।

५- वैष्णव दया की साकार मूर्ति होता है, अस्तु, दूसरे के कष्ट सहने की क्षमता उसमें नहीं होती।

---०---

४९. वैष्णव में करुणा

१- वैष्णव के अन्त:करण में करुणा सिन्धु की करुणा जीव मात्र के कल्याण के लिये अपना आवास बना लेती है। अस्तु, भक्त के स्वभाव में करुणा का अवतरण हो जाता है।

२- करुणा रसाविष्ट वैष्णव कीट पतंग के कष्ट को न सहता हुआ मुर्छभाव को प्राप्त हो जाता है।

३- वैष्णव का हृदय मोम की तरह कोमल होने से दूसरे के दु:ख दावाग्नि की आँच से तुरन्त पिघल कर करुणामय हो जाता है।

४- जीवों की दयनीय दशा को देखकर आत्मवत सर्वभूतों को

देखने वाला वैष्णव अपने ही ऊपर उस आघात को आया हुआ समझकर करुणा से परिपूर्ण हो जाता है।

५- वैष्णव के हृदय में हार्दानुग्रह का कोष परिपूर्ण होता है। अस्तु, वह हृदय-धनी-भक्त करुणा पूर्ण होकर सभी को दर्शन देता है।

---०---

५०. वैष्णव में अहैतुकी कृपा

१- करुणा से ओत-प्रोत वैष्णव किसी भी जीव के कष्ट को देखकर अपनी अहैतुकी कृपा से उसके दुःख-दोष निवारणार्थ प्रयत्न करने लगता है।

२- वैष्णव आप्तकाम निर्पेक्ष और शान्त-दान्त होता है। उसे अपने लिये कुछ न चाहिये, अस्तु उसकी कृपा का अहैतुक होना स्वाभाविक है, जो उसके नवनीत-कोमल-चित्त से उद्भूत होती है।

३- वैष्णव का सम्पूर्ण योगक्षेम भगवान करते हैं, जिससे वह सदा निश्चिन्त रहता है, अस्तु अपनी सहज कृपा परवश होकर किसी के साथ यत्किञ्चित उपकार करता है, वह अकारण ही करता है।

४- कृपासिन्धु करुणा-वरुणालय भगवान की कृपा अहैतुक होती है इसलिये उनके शेष भूत दासों में अहैतुक कृपा का होना स्वरूपानुकूल ही है।

५- वैष्णव अपने को भगवान का सहज सेवक समझता है, इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों में प्रतिष्ठित प्रभु की जो भी सेवा उसके स्वभावानुसार बनती है, वह निर्हैतुक ही होती है क्योंकि कैंकर्य करना ही उसका परम पुरुषार्थ है।

---०---

५१. वैष्णव में विश्व-बन्धुता

१- विष्णुमय जगत से वैष्णव के हृदय में मैत्रिभाव होना स्वाभाविक है, क्योंकि वह प्रत्येक भूतों में अपने परम और सहज सुहृद भगवान का ही दर्शन करता है।

२- आत्मवत सर्वभूतों में प्रतिष्ठित अपनी ही आत्मा का और अपने में सर्वभूतों का जो दर्शन करता है, उस वैष्णव के हृदय में सबके प्रति सुहृदता के भाव निसन्देह उत्पन्न हो जाते हैं।

३- विष्णु से जायमान जगत सब का सब वैष्णव है, इसलिये सभी वैष्णव अपने बन्धु हैं, इस प्रकार के भाव से भावित वैष्णव सभी को अपना सहोदर सुहृद समझता है।

४- सम्पूर्ण संसार विष्णु का शरीर है, अस्तु भगवत-भक्त, भगवान के श्री अंगों से सहज ही स्नेह करते हैं।

५- बोध स्वरूप वैष्णव सहज ही सबके प्रिय और सबके हितकारी होते हैं, इसलिये सर्वभूतों के साथ सुहृदता का बर्ताव करते हैं।

---o---

५२. वैष्णव में मुदिता

१- वैष्णव प्रत्येक परिस्थिति को प्रभु का कृपा-प्रसाद समझता है, जो अपने कल्याण के लिये ही उपस्थित हुई है, अस्तु उसके मुखोल्लास में न्यूनता नहीं आती।

२- वैष्णव सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का प्रकृति के (देह के) विकार समझता है आत्मा के नहीं, इसलिए स्वरूपज्ञ वैष्णव सर्वदा स्वरूप में स्थित प्रसन्न चित्त बना रहता है।

३- वैष्णव का जब अहंकार और ममकार ही गल गया तो राग द्वेष कहाँ से प्रादुर्भूत हों और द्वेषादि के बिना दुःख के उद्गम स्थली का निर्माण कार्य कहाँ बने, अस्तु वैष्णव सदा प्रसन्न मुद्रा में सबको अपना दर्शन देता है।

४- वैष्णव को जब शेषत्व का वैशद्य ज्ञान अच्छी प्रकार से हो जाता है, तब वह अपने सुख-दुःख की चिन्ता को छोड़कर प्रभु सुख में सर्वकाल सुखी बना रहता है।

५- वैष्णव जब अपने आत्म देव को आत्म समर्पण ही कर दिया तो उसे लोक और परलोक के हानि से क्या चिन्ता, अस्तु बिना चिन्ता के अभाव में उसका मुखाम्भोज सदा विकसित बना रहता है।

---o---

५३. वैष्णव में उदासीनता

१- वैष्णव मन से स्थावर-जंगम-जगत के सभी प्राणियों को प्रणिपात-प्रणाम करते हुये सभी के कल्याण की कामना करते हैं, परन्तु संसृति को प्रदान करने वाले संसारियों के संग से सदा उदासीन ही बने रहते हैं।

२- वैष्णव सुत-दारादि कुटुम्बियों को संसार की वृद्धि करने वाले आगन्तुक स्वार्थ-परायण सम्बन्धी समझकर उनके बीच में रहते हुये उसी प्रकार उदासीन और अलिप्त बने रहते हैं, जैसे जल में रहते हुये जलज।

३- वैष्णव बड़ी से बड़ी विभूति पाकर भी उससे उदासीन रहते हैं क्योंकि वे सम्पत्ति को विपत्ति और नश्वर समझने वाले होते हैं।

४- वैष्णव अपने देह-गेह से भी सदा उदासीन बने रहते हैं क्योंकि इनकी आसक्ति को वे भगवत प्राप्ति की बाधिका समझते हैं।

५- वैष्णव अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष से भी सर्वदा उदासीन रहते हैं क्योंकि उनकी मान्यता में उक्त पदार्थ भगवत प्राप्ति तथा उनके अनुराग पूर्ण कैंकर्य के प्राप्ति के विरोधी हैं।

---o---

५४. वैष्णव में तितिक्षा

१- वैष्णव बृहदात्-वृहद् विपत्तियों के प्राप्ति में धैर्य को नहीं खोते क्योंकि उनके ज्ञान में आये हुये सभी दु:ख प्रभु-प्रसाद होते हैं और उनको प्रसन्नता पूर्ण भोगने में ही अपना कल्याण है, ऐसा उनका द्रृढ़ निश्चय है।

२. वैष्णव दु:खादि द्वन्द्वों को केवल देह ही में दर्शन करता है, आत्मा में नहीं, अस्तु शरीर के दु:खी होने पर वह दु:खी नहीं होता क्योंकि वह स्वरूपज्ञ है। अन्तर्मुखी वृत्ति से आत्मा में ही स्थित रहता है।

३- वैष्णवों में वृक्ष से भी बढ़कर सहिष्णुता होती है। वह किसी के भी किये हुये अपराध को एवं आकस्मिक आये हुये त्रितापों को अपने पाप का परिणाम समझकर सह लेता है।

४- वैष्णव घोर से घोर आपत्ति और कठिनाइयों के आने पर भी उसी प्रकार तितिक्षु बना रहता है जिस प्रकार काली अंधेरी रात को देखकर विश्व धैर्य को धारण किये रहता है।

५- वैष्णव जब स्वकीय स्वत्व को सर्वभावेन अपने प्रभु को अर्पण कर दिये तो लोक-हानि की चिन्ता उन्हें क्यों कर हो। वे महान से महान आपत्ति के सहने में सक्षम होते हैं, क्योंकि अहंकार और ममकार उन्हें स्पर्श नहीं कर सकते।

---o---

५५. वैष्णव में एकता

१- वैष्णव जब चराचर जीवों और उनके शरीरों को (जीव और प्रकृति को) अपने भगवान का शरीर समझता हुआ प्रभु को सर्व शरीरी जानता है तो एकता का दर्शन होना उसके लिये स्वाभाविक है।

२- वैष्णव जब जीव समुदाय एवं अष्टधा प्रकृति को प्रभु के स्वरूप के भीतर ही देखता है, भिन्नता का भान ही भुला दिया तो एकता ही एकता का दर्शन होना उसके अनुकूल है।

३- वैष्णव को प्रेम की अतिशयता से जब श्याम सुन्दर की सलोनी सूरत अणु-अणु में नजर आने लगी तब अन्य वस्तु (जीव और प्रकृति) का अस्तित्व ही न रहा अस्तु एकता का दर्शन होना उसके लिये सहज और स्वरूपानुकूल है।

४- वैष्णव को जब यह भली-भाँति ज्ञात हो गया कि यह विश्व, विष्णु (व्यापक ब्रह्म) से जायमान है, उसी में प्रतिष्ठित है, उसी से जी रहा है और अन्त में उसी में विलीन हो जायगा तो वैष्णव के हृदय में एकता का होना स्वाभाविक है।

५- जिस प्रकार विचार करने पर कार्यभूत घट में कारण भूत मृत्तिका की मृत्तिका दीख पड़ती है, पट में सूत्र ही सूत्र नजर आता है, उसी प्रकार वैष्णव को विवेकतया यह संसार विष्णुमय प्रतीत होने लगता है, अस्तु उसके लिए एकता का दर्शन होना सहज है।

५६. वैष्णव में समता

१- वैष्णव के अन्तरालय में जब एकता की प्रतिष्ठा हो गई तो समता स्वयं बिना साधन के भक्त-हृदय में उसी प्रकार आ जाती है, जिस प्रकार मिश्री के ढेले में हर ओर से मीठेपन का ज्ञान। समता के दर्शन से वैष्णव सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जय-पराजय और निन्दा-स्तुति इत्यादि द्वन्द्वों में सम बना रहता है, जिससे उसके अन्त:करण का स्पर्श द्वन्द्वजनित हर्ष और विषाद नहीं कर पाते।

२- जब एक ही परमात्मा का दर्शन अखण्ड रूप से अखिल विश्व के चराचर प्राणियों में वैष्णव को होने लगता है तो समता के शुभागमन में संदेह नहीं रहता।

३- पंच भूतों से सभी ऊंच-नीच देहों का निर्माण होता है तथा चेतन तत्व सम्पूर्ण शरीरों में समान रूप से संप्रविष्ट होकर सभी भूतों को चेतनान्वित करता है। इस प्रकार ज्ञान के उदय हो जाने पर समता स्वयं वैष्णव के हृदय देश में संप्रकाशित होने लगती है।

४- वैष्णव के मन से भेद-बुद्धि के दूर होने पर, अभेद बुद्धि के प्रतिष्ठित होने से समता का विकास सहज ही होने लगता है।

५- वैष्णव के हृदय में जब अस्मिता ही न रही तो असमता का दर्शन कौन करे फिर तो समता का ही साम्राज्य शेष रह जाता है।

नोट :- समदर्शी होने पर भी प्रत्येक जीव के साथ, प्रत्येक परिस्थिति में समवर्तीपना असम्भव और अशक्य है जैसे अंगी किसी अंग के रोगी होने पर कष्ट का अनुभव करता हुआ औषधादि उपचारों से स्वस्थता प्राप्त करने की चेष्टा करता है किन्तु हर अंगों से एक ही बर्ताव करने में अपने को असमर्थ पाता है।

---o---

५७. वैष्णव में शम-दमादि गुण

१- वैष्णव जब अपने मन एवं इन्द्रियों को भगवत चरणारविन्दों में समर्पण कर देता है तो वे हृषीकेश अपने आश्रित अनुयायी भक्त को शम-दमादि गुण-गण प्रदान कर देते हैं। जिससे शनैः शनैः वैष्णव अपने मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

२- यथा गारुड़ी मंत्र के पढ़ने से सर्प-विष सहज ही उतर जाता है, उसी प्रकार अव्यावृत भजन एवं भगवत की भगवती भास्वती कृपा से शरणागत चेतन के मन में विषय-लिप्सा दूर भग जाती है, अस्तु, वैष्णव के हृदय में शम-दमादि सम्पत्ति का सन्निवास सरलता से हो जाता है।

३- वैष्णव जब प्रकृति के पार अपनी आत्मा का दर्शन कर लेता है तब मन का निग्रह और इन्द्रिय-निग्रह उसके स्वाभाविक गुण बन जाते हैं क्योंकि उसका मन प्रकृति में स्थित नहीं रहता।

४- वैष्णव के हृदय में ग्रहण-त्याग तथा इच्छाऽनिच्छा का आग्रह ही नहीं रहता तो शम और दम का होना उसके अनुकूल ही है।

५- वैष्णवों की उरस्थली जब उनके भगवान की विहार-स्थली ही बन गई तो उस हृदय को द्वन्द्वातीत एवं शमदमादि गुणों से युक्त होना सहज हो जाता है।

---o---

५८. वैष्णव में शान्ति

१- वैष्णव के चित्त की चंचलता के अभाव से मन में ग्रहण-त्याग और इच्छाऽनिच्छा का आग्रह न रहने पर उसके हृदय-प्रांगण में अशेष-शान्ति सुन्दरी की ही केलि अनवरत हुआ करती है।

२- सद्गुरु एवं संतों का सेवन करते-करते आचार्य प्रसाद से वैष्णव के हृदय-स्थल में सहज ही शान्ति-सरिता का संप्रवाह अपने में अपने से अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को आत्मसात कर लेता है।

३- वैष्णव, शान्ति के सागर, सुख-स्वरूप अपने भगवान के पाद-पद्मों को त्याग कर स्वप्न में भी अन्यत्र जाने की कामना नहीं करता, इसलिये वह शान्ति के सुख-सिन्धु में सदा निमग्न रहता है।

४- वैष्णवों में अविद्यादि पंच-क्लेशों की तनुता का दर्शन होते ही शान्ति-सुधा का सरोवर उसे सराबोर किये रहता है।

५- वैष्णव त्याग की मूर्ति होता है, इसलिए शान्ति ही शान्ति उसे चारों ओर से आवृत्त किये रहती है।

---o---

५९. वैष्णव में शीलता

१- अहंता-ममता रहित नैच्यानुसंधान से संयुक्त एवं घट-घट में विष्णु भगवान का दर्शन करने वाले वैष्णव का हृदय सहज ही शील से सम्पन्न हो जाता है। उसकी प्रत्येक चेष्टा तथा प्रत्येक गुण, शील से संशोधित रहते हैं।

२- शील, वैष्णव के लिए भगवान की एक उत्तम देन है, जिससे शील से सराबोर भक्त का हृदय अतुलित आभा का आन्दोलान्वितामभोधि बना रहता है।

३- स्वरूप स्थित वैष्णव के उरालय में स्वरूपानुरूप शील सहज ही स्वयं आकर सदा के लिए बस जाता है, इसलिये उसका शीलवान बन जाना स्वाभाविक है।

४- शील सिन्धु भगवान जब भक्त के अन्त:करण में निवास करने लगते हैं तब उस वैष्णव के हृदय में शील की सरिता बहने लगना स्वामी-सेवक के अनुकूल है।

५- शील संतों का अलंकार एवं आत्मा का सरस प्रकाश है वस्तुत: सन्त स्वभाव से संयुक्त वैष्णव में शील का संप्रदर्शन सहज सरल और उसके आत्मानुरूप है।

---०---

६०. वैष्णव में सरलता

१- शील सम्पन्न वैष्णव सभी दृष्टियों से सरल होता है। उसकी रहनी, कहनी और करनी तथा मिलनी सरलता से ओत-प्रोत होती है, क्योंकि उसमें बनावट, दंभ और पाखण्ड का अत्यन्ताभाव होता है।

२- वैष्णव अपने सरल स्वभाव से सबका प्रिय होता है। पशु-पक्षी भी उसके मित्र बन जाते हैं।

३- अमानी और अपेक्षा रहित वैष्णव सबको सरलता से सुलभ रहता है।

४- मन से सबकी पूजा करने वाले वैष्णव का सरलता से सुशोभित होना स्वाभाविक है।

५- सरलता वैष्णव की सहिदानी है। वह इस गुण से कभी अलग होते नहीं देखा जाता।

---०---

६१. वैष्णव में कोमलता

१- वैष्णव का हृदय कोमलता की कमनीय कान्ति से दैदीप्यमान रहता है, क्योंकि उसमें आर्द्रतोत्पादक कृपा, करुणा, क्षमा, दया और शीलादि दिव्य गुण अपना आवास बनाकर नित्य निवास किया करते हैं।

२- जिस वैष्णव के हृदय में कठोरता की नाम मात्र स्थिति नहीं रह जाती, उस हृदय में कोमलता ही कोमलता का संप्रदर्शन सुलभ हो जाता है।

३- कोमल चित्त भगवान का भक्त अपने भगवान के इस गुण को उसी प्रकार अपने में अवधारण कर लेता है, जैसे पिता की सम्पत्ति को पुत्र।

४- कोमलता पूर्ण वैष्णव का हृदय जब पर दुःख से द्रवीभूत हो जाता है, तब उसके उक्त गुण का प्रत्यक्ष दर्शन प्राणियों को होने लगता है।

५- वैष्णव की वार्ता एवं उनकी दृष्टि भी कोमलता का दर्शन कराती है।

---०---

६२. वैष्णव में अनासक्ति

१- वैष्णव, जब तन-मन-धन, स्त्री-पुत्र सभी भगवान को अर्पण करके ममत्व हटा लिया तो आसक्ति का उन्मूलन हो जाना उसके लिये सहज हो जाता है।

२- वैष्णव जब अपने को भगवान का भोग समझ लिया, भोक्तापन की गन्ध गल गई तो भोगों में उसकी आसक्ति का होना असम्भव हो जाता है।

३- वैष्णव में जब अहंकार का अभाव हो गया तो ममकार की मृत्यु हो गई, मम के मरने पर कौन और किससे आसक्ति करें।

४- वैष्णव का जीवन जब त्यागमय शान्ति सुधा का स्रोत ही बन गया, तो उसमें आसक्ति के विष वृक्ष का न पनपना स्वाभाविक है।

५- वैष्णव के हृदय में प्रिय और अप्रिय के प्राप्ति में हर्ष-विषाद एवं राग-द्वेष का जब जन्म ही नहीं होता, तो आसक्ति कहाँ से उत्पन्न हो।

---o---

६३. वैष्णव में सत्यता

१- वैष्णव सहज ही सत्य -सनातन, आदि-अंत से रहित विष्णु (व्यापक ब्रह्म) भगवान का उपासक होता है, अस्तु उसकी सभी चेष्टायें सत्य से शोधित रहती हैं।

२- वैष्णव सत्य से बढ़कर कोई धर्म व असत्य से अधिक कोई अपराध नहीं समझता, इसलिये वह सत्य का संग्रही और असत्य का परित्यागी होता है।

३- वैष्णव सत्य को अग्रसर करके ही सत्य परमात्मा की प्राप्ति के लिये आगे कदम उठाता है, क्योंकि उसके ज्ञान में सत्य के सहारे ही सत्य की प्राप्ति होती है, यह दृढ़ निश्चय है।

४- वैष्णव से आकृष्ट सत्य स्वयं आकर असत्य को बहिष्कृत करके सदा-सदा के लिये वैष्णव हृदय को अपना निवास स्थान बना लेता है, इसलिये वैष्णव के स्वभाव में सत्य ही सत्य का दर्शन होता है, जैसे किसी को पिशाच लगने पर उसके आचरण में पिशाचीपने का दर्शन स्वाभाविक होता रहता है।

५- वैष्णव सत्य के दर्शन करने पर सत्य-स्वरूप हो जाता है, अस्तु उसके मन-वचन और कर्म सत्य से संसिक्त होते हैं।

---o---

६४. वैष्णव में अहिंसा

१- वैष्णव सहज ही करुणा, कृपा, दया, क्षमा और सौम्यता की मूर्ति होता है, अस्तु वह सर्व देश, सर्व काल में सर्व प्राणियों को कठिन से कठिन परिस्थिति के प्राप्त होने पर त्रिकरण अहिंसा के द्वारा अभयी बनाये रहता है।

२- वैष्णव को जब चराचर में भगवत दर्शन पाने की द्रृष्टि प्राप्त हो गई तो वह किसी की किसी प्रकार की हिंसा क्योंकर करे। वह किसी को कष्ट पहुँचाना भगवान को पदाघात करने के समान जानता है।

३- वैष्णव सर्वभूतों को आत्मवत समझता है अस्तु आत्मघातानुरूप अपने से अपने को क्लेशित करते उससे नहीं बनता।

४- वैष्णव, पर को पीड़ित करने के समान कोई पाप और अपने पतन का कोई हेतु नहीं समझता, इसलिए वह त्रिकरण हिंसा से अछूता ही बना रहता है।

५- वैष्णव के हृदय-देश में किसी प्राणी के किसी प्रकार के हिंसा करने की वृत्ति का कारण आंशिक रूप से भी नहीं रहता, तो वह हिंसा कैसे करें, अस्तु वह अहिंसक ही बना रहता है।

---o---

६५. वैष्णव में अस्तेय

१- वैष्णव का हृदय निर्मल एवं छल-कपट और सर्वथा चौर्यता के दोष से रहित होता है क्योंकि वह आप्त-कामना के भावना से भावित किया गया है।

२- वैष्णव जब अपनी वस्तु को अपनी और अपने उपयोग के लिये नहीं समझता तो दूसरों के द्रव्यादि को अपहरण करने का कुविचार उसके मन में कैसे आये।

३- वैष्णव अन्यायोपार्जित एवं संसारासक्त पुरुषों से प्रदत्त धन को नहीं ग्रहण करता, क्योंकि इससे उसके स्वरूप की हानि होती है, अस्तु अस्तेय गुण से वह युक्त रहता है।

४- वैष्णव का योगक्षेम स्वयं लक्ष्मीपति भगवान करते हैं। वे अपने आश्रित के प्रिय एवं हित करने में सदा सावधान रहते हैं, अस्तु निश्चिन्त वैष्णव चौर कर्म को स्मरण तक नहीं करता।

५- वैष्णव महान से महान कष्ट सहन करने में सक्षम होता है, किन्तु शास्त्र विरोधी आचरण के अपनाने में असहिष्णु होता है, इसलिये वह अस्तेय नामक शुभ गुण से सर्वदा सुशोभित होता है।

६६. वैष्णव में ब्रह्मचर्य

१- वैष्णव परदाराभिमर्शन को हलाहल विष और निज पत्नी अनुभव को दूध में मिला हुआ विष समझते हैं, अस्तु वे ब्रह्मचर्या में ही चरते हैं।

२- वैष्णव वेद-विहित स्वकीया नारी भोग को भी प्रभु-प्रेम-प्राप्ति एवं उनके कैंकर्य लाभ का विरोधक समझते हैं, अस्तु विषय सेवन से वे सदा बचे रहते हैं।

३- वैष्णव सहज ही वैराग्यवान होते हैं। वे स्त्री-विलास को वमन के समान परित्याग किये रहते हैं। उन्हें स्त्री का कामुक स्पर्श काँटों के समान चुभता है, अस्तु वे सहज ही ब्रह्मचर्य से युक्त रहते हैं।

४-वैष्णव विषयानुभव से स्वरूप की महा हानि समझते हैं, अस्तु स्वरूपज्ञ वैष्णव विषय को मन से भी स्मरण न कर ब्रह्मचारी ही बने रहते हैं।

५- विशुद्ध वैष्णव के हृदय में विषय सेवन की रुचि ही उत्पन्न नहीं होती, अस्तु ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित वीर्य लाभ लेकर तत् शक्ति तथा तत्तेज से ब्रह्म (विष्णु) चिन्तन में सदैव मग्न रहते हैं।

---०---

६७. वैष्णव में अपरिग्रह

१- वैष्णव के हृदय में अप्राप्त वस्तु के पाने की कामना और प्राप्त वस्तु में राग-द्वेष की भावना नहीं होती। वह अपनी आवश्यकताओं को अत्यन्त क्षीण बना लेता है, इसलिए देह-यात्रा के निर्वाह मात्र से अधिक अन्य कुछ भी संग्रह न करना उसका स्वभाव होता है।

२- वैष्णव में जब अहंकार के अभाव से ममता का समूल संहार हो जाता है, तब उसे किसी वस्तु के परिग्रह की कामना अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाती।

३- वैष्णव परिग्रह को भगवत-भजन एवं प्रभु-प्राप्ति का विरोधक समझता है, अस्तु वह संग्रही नहीं होता।

४- वैष्णव अपने योग-क्षेम का भार भगवान को सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है, अस्तु स्वयं के लिए संग्रह करने की उसे क्या आवश्यकता?

वह तो अपने एक आराध्य देव के दासत्व अर्थात् वैष्णवत्व की ही कामना वाला होता है।

५- वैष्णव के मन्दिर, स्थान और आश्रम में जो संग्रह देखा जाता है, उससे वह अलिप्त रहकर ममत्व बुद्धि से विहीन होता है, संग्रहीय वस्तु को भगवत और भागवत की सेवा के लिये उन्हीं की समझकर सेवक की भाँति रक्षा करता है, वह अपनी वस्तु है तथा अपने भोग के लिए है, मन से भी कभी स्वीकार नहीं करता।

---o---

६८. वैष्णव में संतोष

१- वैष्णव के आप्तकाम हृदय में अप्राप्त वस्तु की अभिलाषा अनुदित ही बनी रहती है, साथ ही प्राप्त वस्तु में उसका चित्त राग-द्वेष एवम् ग्रहण-त्याग के आग्रह और आसक्ति से युक्त नहीं होता, इसलिए वह सदा अपने ही आप में संतुष्ट बना रहता है।

२- वैष्णव को एक मात्र सर्वस्व धन श्रीपति भगवान ही जब मिल गये, तो फिर तुच्छ वस्तुओं के लिए उसका मन क्यों ललचाये। पारस मणि के प्राप्त होने पर अन्य द्रव्य की अभिरुचि का उद्भूत न होना स्वाभाविक है।

३- जिस वैष्णव के हृदय-स्थल से चिन्ता ने अपना आसन उठा लिया, चाह कृशता को प्राप्तकर मृतप्राय हो गई, उसका हृदय सर्वदा संतोष का वास स्थान बन जाता है।

४- जिस वैष्णव के मन में भगवान के अतिरिक्त अन्य वस्तु का अस्तित्व ही नहीं रह गया, तो उसके हृदय में अन्य के पाने की अभिलाषा ही क्योंकर उत्पन्न हो। वहाँ तो संतोष ही संतोष का साम्राज्य संप्रतिष्ठित हो जाता है।

५- जब वैष्णव का मन निज सुख में विलीन हो जाता है, तब चित्त की चंचलता चली जाती है, अस्तु उस हृदय स्थली में संतोष ही संतोष का दर्शन होता है।

---o---

६९. वैष्णव में शौच

१- वैष्णव अपने देह को भगवान के कैंकर्य के योग बनाने के लिए जल और मिट्टी से सदा स्वच्छ और पवित्र रखता है।

२- वैष्णव इन्द्रिय निग्रह के द्वारा अपनी इन्द्रियों को पवित्रतम रखता है, ताकि वे भगवत विषयिनी बनी रहें।

३- वैष्णव शम के सहारे अपने मन का निग्रह करके उसे अचंचल और पवित्र बना देता है, जिससे चित्त सहज ही प्रभु का चिन्तन करने में समर्थ हो जाता है।

४- वैष्णव अपने स्वरूप से अपने बुद्धि के पृथकत्वपने का सत्य ज्ञान बुद्धि में स्थित कर बुद्धि ही को सूक्ष्म और पवित्रतम कर देता है ताकि वह भगवान का वरण करके उन्हीं के विमर्श में लगी रहे।

५- वैष्णव अपनी आत्मा भगवत्-अर्पण कर आत्मा को भगवान का सहज शेष भूत दास और भोग्य वस्तु समझने लगता है। अकार त्रय सम्पन्न होकर वह परम पवित्र पावन को भी पावन करने वाला तीर्थीभूत हो जाता है।

---०---

७०. वैष्णव में विनय एवं नम्रता

१- वैष्णव स्वभाव से विनय शील एवं नम्र होता है, क्योंकि वह नैच्यानुसंधान में सर्वदा निरत रहता है।

२- वैष्णव सर्व भूतों में स्थित अपने उपास्य देव के दर्शन का अभ्यासी होता है, अस्तु अपने भगवान के सम्मुख विनय मुद्रा से उपस्थित होना उसका सहज धर्म होता है।

३- वैष्णव विवेकवान और उदारात्मा होता है, अस्तु विद्वान में विनय का दर्शन तदनुकूल ही है।

४- वैष्णव में जब अहंकार ही नहीं, तो उसमें अविनयता का उदय कहाँ से हो, इसलिए वह विनम्र होता है।

५- वैष्णव दास धर्म विग्रहवान होता है, उसमें स्वरूप-विरोधी

कोई दुर्गुण उद्भूत नहीं होते, अतएव उसमें नम्रता का नव-नव निखार दृष्टिगोचर होता रहता है।

---o---

७१. वैष्णव में वात्सल्य

१- वैष्णव का हृदय-कोष वात्सल्य गुण से परिपूर्ण होता है। वह प्रत्येक व्यक्ति के साथ उक्त गुण का उपयोग करके उसे सुखी बनाने की चेष्टा करता है।

२- जब सभी भूतों में वैष्णव को अपनी आत्मा और परमात्मा का दर्शन होने लग् जाता है, तब वह स्वाभाविक सबका हितैषी बन जाता है, तथा वात्सल्य गुण से सम्पन्न हो जाता है।

३- सर्व प्राणियों में अपनत्व की भावना उदय हो जाने पर वैष्णव सहज ही प्रेम पूर्ण बर्ताव सबके साथ करता हुआ वात्सल्य गुण से वंचित नहीं रहता।

४- प्रभु कृपा से वैष्णव में वात्सल्यता का प्रादुर्भाव होना सहज हो जाता है।

५- वैष्णव में परोपकार की भावना वात्सल्य गुण की जननी है, अस्तु वात्सल्य भाव से भावित हो जाना उसका सहज स्वभाव है।

---o---

७२. वैष्णव में सौलभ्य-दर्शन

१- वैष्णव स्वयं अमानी बनकर अन्य सभी प्राणियों को मान देने के स्वभाव वाला होता है, इसलिये वह निम्न वर्गों को भी सुलभ रहता है।

२- वैष्णव सभी जीवों की प्रसन्नता को भगवान की प्रसन्नता समझता है, अस्तु अपने मिलने की कामना करने वाले किसी को भी वह सुलभ हो सकता है।

३- वैष्णव अपने प्राप्ति की इच्छा करने वाले निम्न कोटि के प्राणियों को भी इसलिये सुलभ हो जाता है, कि हमारे मिलने से अमुक व्यक्ति का

अन्त:करण सुखी होगा-जिस प्रकार से उसे सुख-सुविधा संप्राप्त हो सके वही कर्तव्य करना उस जीव में प्रतिष्ठित हमारे भगवान की पूजा होगी। ऐसी वैष्णव की दृढ़ मान्यता होती है।

४- वैष्णव स्वयं को सेवक समझता हुआ चराचर संसार को अपने स्वामी का स्वरूप मानता है, इसलिये स्वाभाविक वह सबको सुलभ होता है।

५- वैष्णव सर्व भूतों में दया रखता हुआ सबका हितकारी होता है, अस्तु उसके सौलभ्य गुण का दर्शन सभी को संप्राप्त रहता है।

---०---

७३. वैष्णव में धैर्य

१- वैष्णव करोड़ों विघ्नों के बादलों द्वारा विद्युत पात होने पर भी अचंचल और प्रसन्न बदन बना रहता है क्योंकि वह संतुलित मन वाला संत स्वभाव से सदा संयुक्त रहता है।

२- वैष्णव, समूह संघर्षों, उत्कृष्ट उतार-चढ़ावों और अनेकानेक आपत्तियों के आने पर भी हिमगिरिवत धैर्यवान बना रहता है। वह उतावला और अप्रसन्न कभी नहीं होता। अपने संकट को शीघ्र दूर करने के लिए प्रभु से प्रार्थना भी नहीं करता क्योंकि उसे महाविश्वास है कि हमारे रक्षक हमारे भगवान स्वयं रक्षा करने को कटिबद्ध हैं, उनका जो भी संविधान है, वह हमारे योग और क्षेम के लिये ही है।

३- वैष्णव सभी कष्टों को अपने पापों का परिपाक समझकर भोगने में सहिष्णु होता है, अस्तु आपत्तियों में आसक्त और उद्विग्न न होकर अटल धैर्य को धारण किये रहता है।

४- वैष्णव कठिन से कठिन परिस्थिति के प्राप्त होने पर भी घबराता नहीं क्योंकि उसे वह अपने उन्नति के लिए आई हुई प्रभु प्रसाद की पूर्व भूमिका मानता है।

५- वैष्णव में मुदिता गुण की अधिकता के कारण विषाद के आने का अवसर ही नहीं आता। किसी भी परिस्थिति में उसका धैर्य-बाँध नहीं टूटता।

---०---

७४. वैष्णव में वीरता

१- वैष्णव अनंत जन्म के प्रकृति जन्य नैसर्गिक स्वभाव को शमदमादि गुणों के द्वारा जीतकर मन समेत इन्द्रियों को अपने वश में करके स्वाराज्य सिंहासन में अपने प्रभु को प्रतिष्ठित कर उनके कैंकर्य में देहेन्द्रिय-मन-बुद्धि और आत्मा को अनवरत लगाये रहता है।

२- वैष्णव प्राण प्रण से भागवत धर्म को निभाने में समर्थ होता है। वह आपत्ति काल में भी अचंचल बना हुआ काम-लोभ और भय से स्वपथ का परित्याग नहीं करता।

३- वैष्णव प्राणों की बाजी लगाकर ही प्रेम-पथ का अनुसरण करता है, वह अपने शिर को धड़ से उतार कर पैरों से उसे कुचलता हुआ विष्णु-पुर को पयान करता है।

४- वैष्णव, वैष्णव धर्म के रथ पर आरूढ़ होकर वीरता का परिचय देता हुआ इस अजेय संसार को उसके साथियों सहित जीतकर विश्व-विजयी पद पर अभिषिक्त होता है।

५- वैष्णव, आचार्यानुमोदित वार्ताओं के पालन करने तथा गुरु के प्रिय और हित करने में अपनी आत्मा का उत्सर्ग सर्व भावेन करने के लिये सदोद्यत रहता है।

---o---

७५. वैष्णव में अकिंचनता

१- वैष्णव अपने को सर्वभावेन सर्वसाधन हीनता से संयुक्त पाता है अर्थात् पुरुषार्थ की प्राप्ति में अपने उपाय के अभिमान का दर्शन उसे नहीं होता, इसलिए अकिंचन वृत्ति वाला बना रहता है।

२- वैष्णव से भगवान विष्णु के अतिरिक्त किसी देवी-देवताओं की आराधना नहीं हो पाती अस्तु किसी अन्य बल और स्वबल की अनुपस्थिति उसे अकिंचन बनाने में बाध्य करती है।

३- वैष्णव को भगवान अतिरिक्त संसार में स्थान प्रदायक परलोक की आस बँधाने वाला कोई अपना सगा-सम्बन्धी और हितकर नहीं द्रृष्टिगोचर होता, इसलिए वह अकिंचनता के अलंकार से सदा अलंकृत रहता है।

४- वैष्णव अपनी आत्मा को भी अपने आत्म कल्याण की सहयोगिनी नहीं समझता। वह एक भगवान को ही निर्पेक्षोपाय एवं कल्याण प्रदाता जानता है, अस्तु अकिंचनता उसे वरण किये रहती है।

५- वैष्णव देहाभिमान, स्वरूपाभिमान, उपायाहंकार और उपेयाहंकार से सर्वदा अछूता रहता है, अस्तु वह अकिंचनता की साकार मूर्ति होता है।

---०---

७६. वैष्णव में दृढ़ निश्चयता

१- वैष्णव दृढ़ निश्चयी होता है, क्योंकि उसकी बुद्धि नायिका ने धीरोदात्त नायक भगवान का वरण करके पूर्ण पतिव्रत धर्म परायणा सती साध्वी का स्वरूप प्राप्त कर लिया है।

२- वैष्णव गुरु वचनों में प्रत्यक्ष से भी अधिक प्रतीति करने वाला होता है, इसलिए वह अपने परमाचार्य के निर्धारित पथ और लक्ष्य में कभी अनिश्चय नहीं करता वरन दृढ़ता से सदाचार्य के मार्ग को काम, लोभ और भय के कारण किसी मूल्य पर त्याग न करके ग्रहण किये रहता है।

३- वैष्णव में संशय-समुदायों के विनष्ट हो जाने पर उसका पथ स्वयं दृढ़ निश्चय के साथ प्रशस्त हो जाता है, अस्तु वह अपने भागवत धर्म में स्थैर्यता बनाये रहता है।

४- वैष्णव अपने निश्चय में इतना दृढ़ होता है कि उसे ब्रह्मा, विष्णु व महेश भी अनेकानेक प्रलोभनों का प्रदर्शन कराते हुए ध्येय से विचलित नहीं कर सकते, तो औरों की क्या कथा।

५- सत्संग परायण वैष्णव, सत और असत का ज्ञान एवं अर्थ पंचक तत्व का ज्ञान भली-भाँति आत्मानुभूति के साथ जान लेता है इसलिए वह अपने ज्ञान में सदा अडिग बना रहता है।

७७. वैष्णव में परोपकार की भावना

१- वैष्णव स्वधर्म से सराबोर सहज ही सर्वभूतों का सुहृद होता है अस्तु उसके हृदय-गगन में सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कल्याण कामना की चन्द्र-जोत्स्ना उदित होकर अपने आचरण के किरण समूहों से सब को सुशीतल करती रहती है।

२- वैष्णव सम्पूर्ण संसार को अपने भगवान का शरीर समझता हुआ सर्वभूतों में प्रभु को ही प्रतिष्ठित देखता है, अस्तु सब के हित में तत्पर रहना ही वह प्रभु की पूजा समझता है।

३- वैष्णव आत्मवत सर्वभूतों के सुख-दुख को जानता है, इसलिये अपनी ही तरह सबको सुखी बनाने में प्रयत्नशील बना रहता है, क्योंकि स्वयं कष्ट सहकर भी सबको सुखी करना उसके स्वभाव में उतर आता है। अत: वह सदैव ही सबके हित साधन में तत्पर-स्वभाव वाला होता है।

४- वैष्णव के हृदय में अपने अपराधी के प्रति भी अपकार की भावना का उठना असंभव होता है, इसलिए वह सहज ही परोपकारी होता है।

५- वैष्णव अपने तन-मन-धन-बल-गुण सम्बन्धी सर्व विभूतियों की उपयोगिता परोपभोग में समझता है, स्वानुभव में नहीं। अतएव वह परोपकार को अपना कर्तव्य समझता है, जिसमें अहं आसक्ति और फल की कामना नहीं होती, भगवदर्थ ही सब कुछ होता है।

---०---

७८. वैष्णव का लोक व्यवहार

१- वैष्णव, जगत-समुदाय को परमात्म शरीर समझकर मन से नमन करता है, किन्तु लोक-व्यवहार की रक्षा के लिए शिष्य, पुत्र, स्त्री, सेवक आदि अपने से छोटों के लिये आगे से उनके चरणों में प्रणाम नहीं करता अपवाद रूप में अत्यन्त भाव विभोर की परिस्थिति में पहुँचकर भले ही उसकी रक्षा न हो सके। निम्न वर्ग के प्राणियों को ही नहीं पशु-पक्षी और वृक्ष-लता को भी मान देना तो उसका सहज स्वभाव होता है।

२- वैष्णव, वैष्णव जनों को छोड़कर संसारियों से कुछ नहीं चाहते,

उनके आग्रह से भी अपने लिये कुछ ग्रहण करना उन्हें असाध्य है, परन्तु अपने समीप आये हुये प्राणि मात्र का सादर स्वागत समयानुसार अन्न, जल, आसन और वचन के द्वारा करते हैं, क्योंकि वे आगन्तुक की सेवा भगवत सेवा समझते हैं।

३- लोक में अवैष्णव जन वैष्णवों को अनादर, अपमान, निन्दा, गाली और मार-पीट के द्वारा भले ही कष्ट पहुँचावें, किन्तु वैष्णव भूल कर भी अपने से अनिष्ट व्यवहार करने वाले संसारी जनों का अहित चिंतन नहीं करता, उलटे उनके कल्याण की कामना करता है। प्रतिकूल प्राणियों को पापी कहना एवं उनके दोष का चिंतन करना महान अपराध समझता है। प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति को वह अपने अपराध का परिणाम एवं प्रभु की प्रसादी मानता है, जो स्वयं के सुधार के लिये आई है, अस्तु सहज शीलता से भरे हुये क्षमा-दया से युक्त बना रहता है।

४- वैष्णव, संसारी अवैष्णव जनों के संसर्ग से दूर रहता है, ताकि उनके समान अपने भी न हो जाय, पर यह चाहता है, कि हे प्रभो सभी लोग कल्याण भागी हों, सुख स्वरूप हों, आपके हो जाँय। संसारियों का संग न करने में घृणा और द्वेष कारण नहीं है, उनके पथ का वैषम्य हेतु है। जैसे उत्तर दिशा को जाने वाला व्यक्ति दक्षिण दिशा-प्रस्थान करने वाले पुरुष के साथ कैसे पयान करे।

५- वैष्णव की रसोई भगवान के भोग के लिए बनती है, संसारी जनों की अपने लिए। इसलिए भोजन प्रसाद का भी ग्रहण अवैष्णव के यहाँ वैष्णव का युक्त नहीं होता, किन्तु संसारी लोगों को सादर सप्रेम वैष्णव अपने यहाँ भगवत प्रसाद का भोजन कराकर उनकी क्षुधा शांति करता है व अन्य उपयोगी वस्तुओं को प्रदान करता है।

---०---

७९. वैष्णव में श्रुतिशास्त्रानुकूलता

१- वैष्णव, वेद-पथ का परित्याग कभी नहीं करते। प्रेम की उच्चस्थिति में विधि निषेध का सम्बन्ध अपने आप टूट जाता है, तोड़ना नहीं पड़ता। यह होना भी श्रुति सम्मत ही है।

२- वैष्णव, संसार संग्रह के लिए शास्त्र का संरक्षण किया करते हैं, वे ज्ञानी होकर भी अज्ञानियों के बीच वही आचरण करते हैं, जिससे उन्हें संशय, भ्रम, भेद और मोह न हो, क्योंकि लोक उसी आचरण को सर्वश्रेष्ठ समझकर अपने में उतारते हैं, जिसे महज्जन अपने आचरण में लाते हैं।

३- वैष्णव, श्रुति-शास्त्र को भगवान की भास्वती भव्य वाणी समझते हैं,अस्तु वे कभी श्रुति-शास्त्रों के सिद्धांतों से पृथक नहीं होते।

४- वैष्णव, शास्त्र की अवहेलना करने से अपने पतन का विश्वास करते हैं, इससे वे सर्वदा शास्त्र संरक्षण में संलग्न रहते हैं।

५- किसी भी वैष्णव में सहज ही शास्त्रानुमोदित बर्ताव देखने को मिलता है, क्योंकि वे वेद-वेद्य प्रभु के दास हो चुके हैं, वेद के बिना उन्हें अपने इष्ट का ज्ञान ही असम्भव प्रतीत होता है।

---०---

८०. वैष्णव में त्रिगुणातीतता

१-अनन्य प्रेमा-भक्ति का आश्रय लेने से वैष्णव सहज ही में तीनों गुणों के पार हो जाता है। वह सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के कार्य रूप प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह के उदय होने पर न तो उन्हें बुरा समझता है और न अस्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है।

२- स्वरूपज्ञ वैष्णव प्रकृति से सर्वथा परे एवं विलक्षण चेतन तत्व का अपरोक्ष ज्ञान रखता है, अस्तु प्रकृति के कार्य सत-रज तम के उदय होने पर अहं विहीन वैष्णव उनसे अलिप्त ही बना रहता है।

३- वैष्णव को भगवत और भागवतों की सेवा करते-करते शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है, इस प्रकार कैंकर्य-रत स्वभाव से युक्त वैष्णव त्रिगुणातीत हो जाता है।

४- वैष्णव, कर्ता और कारयिता अपने को न समझता हुआ कर्तव्य बुद्धि से भगवदर्थ आसक्ति रहित तदनुकूल कर्म करता है, अस्तु वह संसार से असंग रहता है। असंग रहना ही त्रिगुणातीतता है।

५- भगवान के परावर स्वरूप का दर्शन करने से वैष्णव अपने सहज स्वरूप में स्थित होकर त्रिगुणातीत बन जाता है।

८१. वैष्णव की महानता

१- वैष्णव अपने को विश्व का बन्धु तथा विश्व को अपना बन्धु मानता हुआ तदनुकूल आचरण करता है। वह भव्य भाव को धारण किये महान होता है।

२- वैष्णव सर्वभूतों में अपनी आत्मा का एवं अपने में सर्व भूतों का दर्शन करता हुआ सबके अनुकूल आचरण करता है, अस्तु वह महत-पद में प्रतिष्ठित होकर विश्वात्मा बन जाता है।

३- वैष्णव, विश्व को भगवान समझता है, उसे चराचर में भगवद्दर्शन होते हैं। वह सबके हित में लगा रहना ही प्रभु की पूजा समझता है, अस्तु वह महानता को प्राप्त होता है।

४- वैष्णव अनंत के ध्यान से अनंत हो जाता है, इसलिये महानता उसका वरण कर लेती है।

५- वैष्णव के हृदय में आर्योचित एवं भगवद्धर्मानुमोदित सभी श्रेय-दिव्य गुण आकर उसे अलंकृत कर देते हैं, इसलिये वह महा-महिम्न-पद का अधिकारी बनकर शोभायमान होता है।

---०---

८२. वैष्णवों में दैन्यता

१- भगवान दीनबन्धु गरीब निवाज हैं। जब तक जीव दीन नहीं बनता तब तक प्रभु उसके बन्धु नहीं बनते, अस्तु वैष्णव दैन्यता के अलंकार से अलंकृत होकर भगवत कृपा-पात्र बनने के अधिकारी बनते हैं।

२- वैष्णव संसार में मित्रोत्कर्षाकांक्षी अपना कोई सहायक साथी नहीं पाते जो प्रकृति के उस पार जाने में साथ दे। सभी सगे संसारी, संसार को विवर्धन करने वाले स्वार्थ से सने होते हैं, अस्तु वे साधनहीन, मायाधीन अपने अनंत अपराधों का स्मरण कर अनुताप से जलते हुए प्रभु प्राप्ति के उपाय से शून्य होकर दैन्यता की साकार मूर्ति बनकर एक हरि चरणों का आश्रय ग्रहण करते हैं।

३- जगज्जनों के पदाघात से बार-बार अपमानित वैष्णव प्रभु की शरण लेते समय दैन्यता की ही भेंट अर्पण करते हैं।

४- अपने अनिष्ट की निवृत्ति और इष्ट की प्राप्ति अनेकानेक साधनों के करने पर जब नहीं सुलभ होती तब अपने बल के अहंकार की समाप्ति होने पर दैन्यता जीव को स्वयं वरण कर लेती है।

५- जीव स्वयं अल्पज्ञ और प्रभु के परतंत्र है। दैन्यता उसका सहज स्वरूप है, इसलिये वैष्णव ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पद को पाकर भी अहंकार, ममकार के आधीन नहीं होते। सदा शिर नत संपुटाञ्जलि भगवत के सामने खड़े होकर प्रतीक्षा किया करते हैं, कि कृपा सिन्धु कुछ कैंकर्य करने के लिये कहेंगे क्या ?

---o---

८३. वैष्णव में स्वपापानुसंधानत्व

१- वैष्णव अपनी आत्मा के प्रकृति सम्बन्ध का हेतु अपनी विषय प्रावण्यता तथा भागवतापचार को मानते हैं।

२- इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट निवृत्ति न होने का कारण वैष्णव अपने अपराधों को ही स्वीकार करते हुये रो-रोकर कहने लगते हैं, कि हाय मैं आर्तिपूर्ण प्रपत्ति न करने से कृपा का अधिकारी नहीं, अनन्य प्रयोजन न होने से प्रभु के प्रेम पात्र बनने का अधिकारी नहीं और जानबूझ कर अपराध करने से क्षमा पाने का अधिकारी नहीं। हाय प्रभु को छोड़ कोई द्वार नहीं, मुझे उन्हीं का आश्रय है।

३- विरह वेदना से व्यथित वियोगी वैष्णव मरण-प्राय होने पर भी जब प्रभु की अप्राप्ति पर विचार करते हैं-तब अपने पापों को प्रतिबन्धक मानते हैं।

४- विरहातुर वैष्णव देह-छूट जाने की इच्छा करते हैं, किन्तु प्रारब्ध वश शरीर शीघ्र शांत न होने पर स्वपापों को ही उसका कारण मानते हैं।

५- वैष्णव देह अछत भगवद्दर्शन पाकर पुन: उनके तिरोधान में एवं एक पूर्ण प्रभु प्रेम की अप्राप्ति में अपने कलुषित कर्मों को ही दोषी ठहराते हैं।

---o---

८४. वैष्णव में विषयासक्ति का सर्वथा अभाव

१- साधक वैष्णव पाप समझकर कामादि सेवन से सदा विरत रहते हैं, जब स्वपत्नी संग इन्हें अच्छा नहीं प्रतीत होता तो पर स्त्री का चिंतन उनका चित्त कैसे करे।

२- प्रपन्न एकान्तिक वैष्णव विहित विषय (स्व-स्त्री सेवनादि) को भी विष मिला हुआ दुग्ध समझकर नहीं सेवन करते, क्योंकि वे अपने को स्वयं भगवान का भोग्य पदार्थ समझते हैं, इसके विपरीत निज को भोक्ता मानने से उनके स्व-स्वरूप की हानि अवश्य सम्भव है।

३- परमैकान्तिक वैष्णव के परमात्मलीन चित्त में विषय सेवन की रुचि ही नहीं उत्पन्न होती, क्योंकि उन्हें स्त्री-पुरुष का ज्ञान ही नहीं, वे अपार सच्चिदानंदामृताम्भोधि में मगन रहते हैं।

४-कोटि-कोटि कंदर्प-दर्प-दलनकारी भगवान के दासों को कामदेव के बाणों का प्रभाव किंचित प्रभावित नहीं कर सकता, क्योंकि वे अपने आराध्य देव की सहज रक्ष्य वस्तु हैं।

५- वैष्णव को जब विषय सेवन की हेयता एवं भगवत भजन की श्रेयता चित्त में स्थिर हो गई तो वे काम सेवन कैसे करें। जैसे विष और अमृत के ज्ञान हो जाने पर स्वाभाविक लोग विष पान नहीं करते और अमृतास्वाद लेने के लिये लालायित रहते हैं। अमृत के अप्राप्ति में भी गरल पान तो नहीं ही करते।

नोट - गृहस्थ वैष्णव में स्व-स्त्री सेवन का जो दर्शन होता है, वह कर्तव्य समझकर शास्त्र के रक्षार्थ एवं प्रजा वृद्धि रूप कैंकर्य की भावना से नतु विषय लिप्सा से ।

---०---

८५. वैष्णव की विषयासक्ति

१- वैष्णव के श्रवण-समुद्र नाना प्रकार के भगवत कथा, कीर्तन रूपी, नदियों से भरते हुये कभी पूर्णता को नहीं प्राप्त होते, सर्वदा सुन्दर-सुन्दर सरिताओं का सुखद जल अपने में आता ही रहे, यही एक कामना कर्ण-सिन्धु को रहती है।

२- वैष्णव के नेत्र साधु-दर्शन एवं भगवद्दर्शन के लिये लालायित बने रहते हैं, सौभाग्य से उक्त दोनों के दर्शन सुलभ हो जाने पर उनकी रूप रसिकनी आँखें अवलोकन करती हुई भी अतृप्ति का अनुभव करती हैं।

३- वैष्णव की रसनेन्द्रिय भगवान के अधर सुधा से सिक्त शीथ प्रसादी के सेवन से जिस आनन्द का आस्वाद लेती है, वह वर्णनातीत है,वह तो, सदा-सदा उस अनुपम रस के ग्रहणार्थ आतुर बनी रहती है।

४- वैष्णव की घ्राणेन्द्रिय भगवच्चरणों में अर्पित पुष्प, तुलसी, चन्दन और इत्र प्रसाद का घ्राण ग्रहण कर सुफल मनोरथ तो होती है, किन्तु सूंघने की लालच को संवरण नहीं कर सकती।

५- वैष्णव की त्वकेन्द्रिय-भगवद्भागवत के पादारविन्दों को कर से स्पर्श, मुख से चुम्बन और हृदय से आलिंगन करके ही तृप्त एवं कृतकृत्य होती है, परन्तु स्पर्श-विषय की कामना कभी कम नहीं होती। उत्तरोत्तर नव-नव प्रवर्धमान होकर वैष्णव को अतृप्ति का ही अनुभव कराने में प्रयत्नशील बनी रहती है।

नोट :- वैष्णव अपने आत्म रमण में रमने वाला महान विषयी होता है, किन्तु उसका विषय निरतिशय सच्चिदानन्दमय शाश्वत सुखद होता है, जो भौतिक विषय से सर्वथा परे विलक्षण और भिन्न है।

८६. वैष्णव में अक्रोधता

१- वैष्णव में काम न होने से क्रोध कहाँ से उत्पन्न हो, क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता।

२- वैष्णव प्रत्येक प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति में अपने अन्तर्यामी भगवान का दर्शन करता है, तो क्रोध किस पर करे।

३- वैष्णव किसी के द्वारा किये हुये प्रतिकूल व्यवहारों में उनको कर्ता नहीं मानता, उसके ज्ञान में वह परिस्थिति प्रभु प्रेरित अपने पाप का परिणाम है जो अपने परिशुद्धता के लिये ही प्राप्त हुई है, अस्तु प्रतिपक्षी के अभाव में क्रोध कैसे उत्पन्न हो।

४- स्वरूप निष्ठ वैष्णव को प्रतिकूलता से न द्वेष है न अनुकूलता से राग ! उसे प्रियाप्रिय प्राप्त होने में न प्रयोजन है न अप्रयोजन, इसलिये उसे क्रोध कहाँ से अपने वश में कर सके।

५- वैष्णव शम-दम से संयुक्त सत्संग परायण शान्ति पूर्ण चित्त से प्रभु के नाम, रूप, लीला, धाम में मगन रहता है, व्यर्थ के लिये उसके पास एक क्षण समय नहीं है, अस्तु वह अक्रोध की मूर्ति होता है। लोगों द्वारा क्रोध उत्पन्न होने के कारण उपस्थित करने पर भी वह शान्त चित्त बना रहता है।

---o---

८७. वैष्णव में निर्मोहता

१- वैष्णव में काम क्रोध का अभाव होने से संमोह उत्पन्न होने का कोई बीज ही नहीं मिलता।

२- वैष्णव साधु-समागम का निरन्तर सेवन करते हुये भगवल्लीलानुवर्णन और श्रवण किया करते हैं, इसलिये उनके हृदय में मोह के लिये स्थान ही नहीं रहता।

३- वैष्णव के मुख से श्री हरि का नाम निरन्तर निकलता रहता है जो मोह को भस्मीभूत बनाने वाला है, अस्तु वैष्णव में निर्मोहता सर्वदा विद्यमान रहती है।

४- वैष्णव शम, दम, सतसंग और विचार के द्वारा मोह रात्रि से सदा जगे रहते हैं, इसलिए महा बलवान मोह उन्हें अपने प्रभाव से प्रभावित नहीं कर सकता, जैसे जाग्रत अवस्था में स्वप्न का दर्शन दुर्लभ होता है।

५- आचार्याभिमानी वैष्णव सद्गुरु शुश्रुषा परायण होते हैं। वे गुरु वचनों को प्रीति प्रतीति पूर्वक सम्मान कर धारण किया करते हैं, इसलिये सद्गुरु-सूर्य के वचन किरणों से शिष्य के हृदय-प्रांगण में मोहान्धकार नहीं रहता।

---o---

८८. वैष्णव में लोकैश्वर्य निर्पेक्षता

१- वैष्णव भगवान से देह सम्बन्धी ऐश्वर्य चाहें तो उन्हें प्रेम रूपी परमार्थ और भगवद् कैंकर्य स्वरूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति न होगी, इसलिये वे ऐश्वर्य नहीं चाहते।

२- चेतनानुरूप प्रभु की सम्मति अप्राप्ति के कारण एवं देहाभिमान विवर्धन का हेतु समझकर वैष्णव लोभ वश प्रभु से ऐश्वर्य की कामना नहीं करते।

३- ऐश्वर्येच्छा करना ही भव-कूप में गिरने की कोशिश करना है, अस्तु वैष्णव इस दुर्लोभ को दूर से ही नमस्कार करते हैं।

४- ऐश्वर्य सुख परिवर्तन शील, प्राकृतिक और क्षण भंगुर है, भोग काल के पश्चात् ही तुरन्त दु:ख का प्रवेश हो जाता है, जो परिताप को प्रवर्धमान करता हुआ अशान्ति का अनुभव कराता है, इसलिये वैष्णव लोभ से दूर भागते हैं।

५- श्री वैष्णव भगवान से शरीर सम्बन्धित किसी प्रकार की कामना करें तो तीन दोष उत्पन्न होते हैं।

१- अप्राप्त वस्तु की इच्छा करना।

२- स्वस्वरूप विरोधिनी वस्तु के लिये यत्न करना।

३- समाधान को प्राप्त प्रभु के हृदय की शान्ति को भंग करना।

अस्तु वैष्णव ऐश्वर्य के लोभी नहीं होते। उन्हें तो भगवद् प्राप्ति के लोभ ने वरण किया है।

नोट :- इसी प्रकार वैष्णव कीर्तिकामी भी नहीं होते, क्योंकि उन्हें कीर्तिधारी भगवान की दासता ने नैच्यानुसंधान से समाहित चित्त कर दिया है।

---०---

८९. वैष्णव में योग सिद्धियों में वैमुख्य भावना

१- योग की सर्व सिद्धियों का चमत्कार प्रकृति में ही प्रतिष्ठित है। अस्तु अप्राकृत स्थिति में रहने वाला वैष्णव इनकी ओर क्यों ताके।

२- योग-सिद्धियाँ वैष्णव के दरवाजे पर दासी बनने के लिये कर-बद्ध खड़ी रहती हैं, किन्तु भगवत रस का रसिक अपने अनुपमेय अनंत रस के आस्वादानन्द में सिद्धियों को विघ्नकारी समझकर उनसे मुख फेर लेता है।

३- जब योगी को कैवली भूत होने के लिये योग सिद्धियों का परिहार अनिवार्य है, तो वैष्णव विष्णु-पद की प्राप्ति में इन्हें विरोधी समझकर न अपनाये तो इसमें आश्चर्य ही क्या !

४- योग सिद्धियों की लिप्सा प्रेम-पथ की कंटकाकीर्ण झाड़ियाँ हैं, जो पथिक के वस्त्र या शरीर में चुभकर हठात् मार्गावरोध करती रहती हैं, अस्तु वैष्णव इनको सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता।

५- योग-सिद्धियाँ योगी की प्रतिष्ठा बढ़ाकर जगत में सम्माननीय बना देती हैं, अस्तु जो भगवद्भक्त अमानी बनकर अपने को छिपाये हुये प्रभु प्राप्ति करना चाहते हैं, वे इनके पीछे क्यों पड़ें।

नोट :- वैष्णव को बिना अष्टाङ्ग योग साधन के सर्व सिद्धियाँ सम्मुख आकर नमस्कार करती हैं, परन्तु अकिंचन भक्त, अकिंचन प्रिय प्रभु की प्रसन्नता के लिए किसी काम में इनका विनियोग नहीं करते। यह बात सत्य है, कि कहीं-कहीं अपवाद रूप में सिद्धियों से कार्य सम्पादित करते हुए वैष्णवों को भी देखा गया है, किन्तु वहाँ भगवदिच्छा से भगवद्भागवत कैंकर्य करने के लिए अनासक्त रूप में ग्रहण है, या यों कहिये कि भगवान ही अपने भक्ति की महिमा प्रगट करने के लिये यथा समय भक्त में सिद्धियों का चमत्कार स्वयं दिखा देते हैं, भक्त स्वयं सिद्धि प्रदर्शन का संकल्प भी नहीं करते।

---o---

९०. वैष्णव में मोक्ष निर्पेक्षता

१- भगवद्भक्ति का परित्याग कर मोक्ष सुख को रहने के लिये अवकाश और स्थान नहीं है, जिस प्रकार बिना थल के जल को। अस्तु, वैष्णव मुक्ति की ओर से उदासीन होकर देव दुर्लभा प्रभु के प्रेमाभक्ति की ही स्पृहा रखते हैं।

२- मोक्ष का आग्रह प्रपन्न वैष्णव के स्वस्वरूपानुरूप नहीं अपितु विरोधी है। उन्हें तो चेतन के अनुकूल दास्य पद पर अभिषिक्त होना ही रुचिकर लगता है, अस्तु वे जन्म-मरण से भयभीत न होकर केवल भगवच्चरणों का अखंड, अनन्त और अमल अनुराग चाहते हैं।

३- वैष्णव, बन्ध के समान मुक्ति की कामना को भी बन्धन समझते हैं, क्योंकि मोक्ष का हठ अपने स्वरूप की अस्थिति पर ही संभव है, अस्तु वे बन्ध-मोक्ष के पार होकर मुक्ति-कामी नहीं होते।

४- मुक्ति की स्पृहा-रूपिणी-पिशाची, पराभक्ति-बालिका को प्रवर्धित होने में विघ्नकारिणी सिद्ध होती है, अर्थात प्रेमानन्द के अनंतानन्द का अनुभव, क्षुद्र मोक्षानन्द नहीं करने देता, इसलिये विष्णु भक्त प्रभु से उनके पादारविन्दों की प्रेमाभक्ति ही याचते हैं।

५- स्वइच्छा से न मोक्ष मिलता न बन्धन। यह चेतन सहज ही परम चेतन के परतन्त्र है, अस्तु इसका मोक्ष बन्धन भी प्रभु परतन्त्र है केवल प्रभु सुख के लिए कैंकर्य करना आत्मानुरूप अनागन्तुक और सहज सिद्ध है, इसलिए वैष्णव बन्धन और मुक्ति को आगन्तुक समझकर उसमें नहीं रमते, उनका परम पुरुषार्थ भगवत कैंकर्य ही है

---o---

९१. वैष्णव की निर्भरता

१- प्रपन्न को अभय प्रदान की प्रतिज्ञा करने वाले भगवान का एवं उनके दुन्दुभि घोष सत्यसन्धता पूर्ण वाक्यों का स्मरण करके वैष्णव निश्चिन्त होकर सर्वदा प्रभु पर निर्भर रहते हैं।

२- भगवान अपने अनन्य आश्रयण करने वाले चेतनों के सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर सर्व शोकों से मुक्त कर देते हैं, अस्तु वैष्णव अपने पाप निवृत्ति का प्रयत्न स्वयं न कर प्रभु पर निर्भर रहते हैं।

३- भगवान अपने अनन्य आर्त-प्रपन्नों के योग क्षेम वहन करने का सहज स्वभाव बना रक्खे हैं, अस्तु विश्वासी वैष्णव अपने इष्ट के बल पर समस्त व्यापारों को छोड़कर निश्चिन्त हो जाते हैं।

४- भगवान स्वयं निर्पेक्षोपाय हैं, जीवों के कल्याण की कामना से ही उन्होंने अपने कमर में कमरबन्द कसकर पहन रखा है, अस्तु यह जानकर वैष्णव निश्चिन्त बने रहते हैं।

५- जैसे नन्हा अबोध शिशु माता पर निर्भर रहता है, उसी प्रकार शरणागत चेतन स्वबल और परबल का अनुसंधान न कर भगवान भरोसे ही जीते हैं।

९२. वैष्णव में अभयता

१- सर्वलोक शारण्य भगवत की शरण में पहुँचकर वैष्णव प्रभु प्रतिज्ञा का स्मरण करता हुआ सर्वदेश, सर्वकाल और सर्वावस्थाओं में अभय बना रहता है।

२- आचार्य की सर्व-समर्थशालिनी अनुकम्पा के बल से वैष्णव त्रिकाल अभयता से युक्त रहता है, क्योंकि सद्गुरु कृपा, नारायण के चक्र से, त्रम्बक-त्रिशूल से, इन्द्र के वज्र से और काल के दंड से भी मुक्त कराने वाली होती है।

३- वैष्णव को भजन करते-करते निश्चिन्तता वरण कर लेती है, अस्तु वह प्रत्येक समय निश्चिन्त रहकर भय में भी भगवान को देखने वाला होता है।

४- वैष्णव अपनी देह या देह सम्बन्धी वस्तु के विनाश से आत्मा की किंचित भी हानि नहीं देखता, इसलिए स्वरूपज्ञ वैष्णव सर्वदा अभय बना रहता है।

५- वैष्णव अहंकार-ममकार से रहित कामना हीन होता है। अपने भगवान को आत्म-समर्पण कर देने के पश्चात उसे भयभीत होने का अवकाश कहाँ ?

---०---

९३. वैष्णव में महान विश्वास

१- भगवान शरणागत चेतन की रक्षा अवश्य-अवश्य बिना कुछ सोचे-विचारे करते हैं, चाहे जीव कितने भी घोर-महाघोर अपराध करके आया हो और आगे भी करे, परन्तु प्रभु उसका त्याग कभी नहीं करते। अन्ततोगत्वा अपने उस भोग्य को निष्पाप निर्मल और विशुद्ध बनाकर उसका विनियोग करते हैं, इस प्रकार वैष्णवों का भगवान के प्रति महान विश्वास होता है।

२- शास्त्र, गुरु, संत और श्री हरि की वाणी में वैष्णवों का विश्वास प्रत्यक्ष के समान रहता है, जिससे वे परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

३- वैष्णव विश्वास की मूर्ति होते हैं, अस्तु वे अपने विश्वास के बल द्वारा पाषाण से भी परमात्मा को प्रगट कर लेते हैं। अनेकानेक इतिहास इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

४- वैष्णवों का अविचल विश्वास होता है कि भगवान अपने भक्त की रुचि एवं प्रतिज्ञा अपनी इच्छा और प्रण को विसर्जन कर पूर्ण करते हैं, अस्तु इस प्रतीति के परम सामर्थ्य-शक्ति से ही भक्त कभी-कभी आश्चर्य जनक भवितव्यता को भी भस्म कर देने में समर्थ पाये गये हैं।

५- वैष्णवों का यह विश्वास होता है कि भगवान के नाम, रूप, लीला और धाम की महोदार महिमा जो श्रुति-शास्त्रों में गाई गई है, वह किंचित मात्र है, शाखा चन्द्र न्याय से जीव को उस ओर ले जाने के लिये संकेत मात्र है, वास्तव में भगवान अनन्त, अगम्य और अनिवर्च हैं, इसलिये उनके उक्त चारों तत्वों की महिमा भी अनंत, अगम्य और अकथ है। यही कारण है, कि वैष्णव इन तत्वों का आश्रय ग्रहण करके परम पुरुषार्थ की प्राप्ति से कृत-कृत्य हो जाते हैं।

---o---

९४. वैष्णव की सिद्धाई

१- वैष्णव स्वयं सिद्धाई के चमत्कार का न तो प्रदर्शन करता है न मन से सिद्ध बनने का प्रयत्न करता है, किन्तु कारण वश कभी-कभी अपने आप प्रभु प्रेरणा से प्रगट होकर वैष्णव की सिद्धाई बड़े-बड़े सिद्धों को आश्चर्य में डाल देने वाली हो जाती है, जैसे प्रह्लाद जी में अनेकानेक चमत्कारों का दर्शन हुआ।

२- वैष्णव के पाँव पलोटने के लिये सिद्धियाँ खड़ी रहती हैं, किन्तु विष्णु-भक्त उन्हें ताकते तक नहीं, परन्तु भागवतों को अकिंचन समझकर जब कोई उनका अपमान करके पराभव करना चाहता है, तब हरि-इच्छा से भक्त के बिना चाहे व बिना कहे उसकी सिद्धाई प्रगट होती है। सिद्ध योगी गोरखनाथ, कबीर स्वामी से हार मानकर शिर नत प्रणाम करते हुये वैष्णवत्व की प्रशंसा किये बिना नहीं रहे।

३- वैष्णव के सामने असुरों और देवताओं के माया की भी शक्ति कुंठित हो जाती है। वैष्णवीय सिद्धता सर्व श्रेष्ठ सिद्ध होती है।

४- वैष्णव की सिद्धता पंच भूतों को भी आधीन करके उनको स्वरूप से विपरीत कर देने में समर्थ होती है।

५- वैष्णव की सिद्धता का इससे बढ़कर और प्रमाण क्या हो सकता है, कि पूर्णतम-परब्रह्म-परमात्मा अपने सहित अपना सर्वस्व सर्मपण करके अपने भक्त के ऋणी बने रहते हैं।

---०---

९५. वैष्णव में असंगपन

१- शरीर के सम्बन्धी (स्त्री-पुत्रादि) जनों के बीच में रहते हुए भी ममत्वासक्ति न होने के कारण वैष्णव असंग ही बने रहते हैं, जैसे जल में कमल पत्र। यद्यपि कुटुम्बियों के सुख-दु:खादि में स्वयं सुखी-दुखी होने का स्वांग करते हैं।

२- देहेन्द्रिय मन और बुद्धि से चेतन सर्वथा विलक्षण पृथक तत्व है, इस प्रकार के बोध से उत्पन्न हुये ज्ञान के कारण स्व-देहादि में वैष्णव की ममत्वासक्ति नहीं होती, अस्तु शरीर-समुच्चय के किये हुये कर्मों के फलाशा और कर्तृत्वाभिमान का परित्याग किये हुये वे असंग ही बने रहते हैं।

३- वैष्णव की सम्पूर्ण चेष्टायें अहंता-ममता और आसक्ति से रहित भगवदर्थ होती है। भगवान के पास पहुँचकर कर्म फल विलीन हो जाते हैं, लौटकर भक्त के सम्मुख नहीं आते, अस्तु वे असंग ही बने रहते हैं।

४- परमात्मा की नाट्यशाला में जैसा पाठ मिल गया वैसा सुचारु रूप से पाठ प्रभु प्रसन्नता के लिये भगवद्भ्यर्चना समझकर वैष्णव कर देते हैं। उन्हें और कुछ न चाहिए, अस्तु स्वसुख की कामना न होने से वे असंग ही बने रहते हैं।

५- मायातीत वैष्णव संसार को नश्वर और नरकप्रद समझते हैं, जिससे जगत के ऊपर उठ जाते हैं। त्रिगुणातीत होने से वे सब कुछ करते हुये, कुछ नहीं करते, उन्हें करने न करने से कोई प्रयोजन नहीं रहता। उनके ज्ञान में न वे कर्ता हैं न कारयिता, परमात्मा की अध्यक्षता से गुण ही गुण बर्तते हैं, अस्तु वे स्वाभाविक असंग ही बने रहते हैं।

१६. वैष्णव में कर्मादि साधन उपायतया अस्वीकृत

१- वैष्णव जो कुछ भी कर्म करते हैं, वह भगवत कैंकर्य रूप से करते हैं, उनका अनुष्ठान उपायतया नहीं होता।

२- वैष्णव ज्ञान का अर्जन स्व-स्वरूप और पर-स्वरूप बोध के लिये करते हैं, उपाय रूप से ज्ञान का ग्रहण नहीं होता।

३- वैष्णव भगवद्भक्ति का विनियोग भगवत् कैंकर्य में रुचि विवर्धन हेतु तथा कल्याण गुणगणानुभव के रसानुभव के लिये करते हैं।

४- इतरोपाय-

(१) अधिकृताधिकार हैं अर्थात उपनयनाधिकारादि की अपेक्षा रखते हैं।

(२) शास्त्र विधि के परतन्त्र हैं।

(३) प्रारब्ध-प्रनाश के अनन्तर फल देते हैं।

(४) अंतिम स्मृति की अपेक्षा रखते हैं। (मरणकाल में मन चंचल हो जाय तो दुर्दशा हो जाती है, जैसे जड़ भरत जी का दृष्टान्त।)

(५) अचेतन हैं अर्थात् कर्मादि उपाय स्वयं जड़ हैं, अस्तु स्वयं स्वतन्त्र रूप से फल नहीं दे सकते। भगवान ही उन उपायों द्वारा फल देते हैं।

(६) साध्य हैं अर्थात् किसी साधक के साधन करने पर सिद्ध होते हैं, स्वयं सिद्ध नहीं है।

(७) कर्म-ज्ञान-भक्ति के समुच्चय की अपेक्षा है।

(८) फल प्राप्ति के लिये ईश्वर की अपेक्षा रखते हैं अर्थात् स्वतन्त्रोपाय नहीं हैं।

(९) स्वरूप विरोधी हैं अर्थात् परतन्त्र स्वरूप चेतन के स्वरूप के विपरीत हैं।

(१०) प्राप्य के असदृश हैं अर्थात् फल बहुत बड़ा, उपाय बहुत क्षुद्र है, इसलिये वैष्णव इतरोपाय स्वीकार नहीं करते।

५- वैष्णव, अकिंचनत्व, अनन्य गतित्व और आर्तित्व दशा में स्थित

होकर अन्योपाय ग्रहण करने से प्राप्य की प्राप्ति में अपने को असमर्थ पाते हैं, अस्तु उपायान्तर का परित्याग किये बिना नहीं रहते।

---o---

९७. वैष्णव की कृतज्ञता

१- हे प्रभु आपने अपनी अहैतुक कृपा से दास को मानव शरीर में प्रवेश कराकर अद्वेषी बनाया और भगवद्भागवताभिमुख्य प्रदान किया। आप ही ने असीम अनुग्रह से सदाचार्य की प्राप्ति कराकर रहस्यत्रयादि तत्वों का बोध कराया पुन: अपने में प्रीति उत्पन्न की अन्यथा मैं अज्ञानी जड़वत बना रहता। आपके कृपा की जय हो, जय हो।

२- हे प्रभो मैंने आर्तिपूर्ण प्रपत्ति नहीं की, अस्तु आपके कृपा का बिल्कुल अधिकारी न था। फिर भी आपने अपनी अकारण अनुकम्पा से अपना दास मानकर अपना अनुभव करा दिया। आपकी सदा जय हो।

३- हे करुणा वरुणालय ! दास तो अन्य प्रयोजन वाला था, अस्तु अनन्य प्रयोजन हुये बिना आपके प्रेम भाजन बनने की कभी संभावना ही न थी, किन्तु आप अपनी अहेतुकी दया दृष्टि से देखकर दास को अनन्य प्रयोजन वाला बनाकर अपना बना लिये। दीनानाथ की जय हो, जय हो।

४- हे महा महिम्न, क्षमा सिन्धु ! दास आपको अपमानित कर अनन्तानन्त अक्षम्य और असह्य अपराध करता हुआ अनन्तकाल से चला आ रहा था, अस्तु अहंकार वश जान-बूझकर पापाचरण करने से यह क्षमा पाने का अधिकारी नहीं वरन् दण्ड का ही पात्र था, किन्तु आपने समस्त अपराधों को भुलाकर दास को वैष्णवों की पंक्ति में बिठा दिया। धन्य है आपके परमोदार्य स्वभाव की, पतित-पावन पाप प्रणाशन की सदा जय हो।

५- हे आरत-हरण-शरण-सुखदायक ! दास अविद्यादि पंच क्लेशों का शिकार बना रहा, कभी सुख की नींद नहीं सोया। धन्य ! भवरोग के वैद्य ! प्रतीत हो रहा है, कि आपकी कृपा के स्पर्श से सर्वथा निरोग होकर आप के कैंकर्य करने की योग्यता प्राप्त करूँगा। आपका सदा मंगल हो।

नोट :- वैष्णव इसी प्रकार श्री जी से, संत और गुरु से कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

९८. वैष्णव का तेज

१- वैष्णव का तेज क्षण-क्षण विवर्धमान होता हुआ उसके अपकारी को असह्य हो जाता है, जैसे अम्बरीष के तेज के सामने दुर्वासा मुनि का तेज फीका पड़ गया और वे वैष्णव तेज को न सह सके किन्तु सज्जन अर्थात् साधु-सेवी उसी प्रकार उसी तेज को प्रियकर समझकर सेवन करते हैं, जैसे शारदीय चन्द्रमा के तेज को शरदातप से तप्त जीव समूह।

२- वैष्णव के हृदयाङ्गण में परम तेज स्वरूप परमात्मा प्रकाशते हैं, अस्तु, भक्त में भगवान का ही परम प्रकाश प्रकाशता है। जिस समय जैसी आवश्यकता हुई, उस समय वैसा तेज भक्त के बिना चाहे और बिना जाने लोगों को अनुभव में आता है।

३- वैष्णव-तेज से बढ़कर कोई तेज नहीं। ब्रह्मास्त्र भी जिसके सामने शक्तिहीन हो जाता है।

४- वैष्णव-तेज से ही भगवान का हृदय द्रवीभूत होकर प्रभु को धराधाम में अवतरित होने की प्रेरणा देता है।

५- वैष्णव-तेज के प्रकाश से ही वैष्णव, वैष्णव-पद अर्थात् परमधाम को प्राप्त करते हैं।

---०---

९९. वैष्णव में जन्म-जन्म वैष्णवत्व की चाह

१- स्वरूपज्ञ वैष्णव को वर्तमान प्राकृत शरीर त्याग पूर्वक पुन: दूसरे स्थूल देह के अप्राप्ति में अतिशयेच्छा तथा अप्राकृत शरीर-लाभ का लोभ, यह दोनों देहाभिमान (शरीरासक्ति) के समान हैं, क्योंकि इससे शेषत्व और पारतंत्ररूप चेतन के स्वरूप की हानि होती है। भगवान जब जहाँ जैसे, जिस योनि में चाहें रक्खें, चेतन को इसी में आनन्द का अनुभव करना चाहिये, अस्तु, वैष्णव केवल वैष्णवत्व की कामना करते हैं।

२- वैष्णवों का भगवदनुराग अपेक्षा शून्य होता है, अस्तु वैष्णव स्वार्थ और परमार्थ-पदार्थ की कामना नहीं करते। उन्हें तो केवल वैष्णवत्व चाहिए।

३- वैष्णव त्रिगुणातीत होते हैं। उन्हें यह इच्छा नहीं रहती कि अमुक-अमुक गुणों का विकास हमारे में हो क्योंकि यह कामना अहंकार की सहयोगिनी है, चेतन को स्वस्वरूप में स्थित नहीं रहने देती, इसलिये वैष्णव केवल वैष्णवत्व को चाहते हैं।

४- वैष्णव लौकिक-पारलौकिक भोग को भगवान के देने पर भी स्वीकार नहीं करते। पंच मुक्तियों की भी उपेक्षा कर देते हैं क्योंकि वे स्वयं भगवान के भोग्य हैं। अत्र-तत्र के भोग की लिप्सा उन्हें स्वरूप-भ्रष्ट कर देती है, अस्तु वैष्णव, वैष्णवत्व को ही वरण करते हैं।

५- वैष्णव विधि-हर के समान शक्ति एवं योग-सिद्धियों की समस्त शक्ति से समन्वित होकर चमत्कार पूर्ण गौरवशाली बनकर लोक-परलोक में नहीं रहना चाहते क्योंकि इससे उनके दास धर्मानुकूल स्वरूप की स्थिरता असंभव है, अस्तु वे वैष्णवत्व को ही जन्म-जन्म चाहते हैं।

---०---

१००. स्थिति भेद से वैष्णव के पाँच भेद

१- असाधक वैष्णव :- सद्‌गुरु की शरण लेने पर भी प्रमाद और आलस से आवृत होकर लक्ष्य और साधन में रति न रखता हुआ साधन-निष्ठ नहीं होता।

२- साधक वैष्णव :- सदाचार्य की शुश्रूषा - पारायण होकर भागवद्धर्मानुसार रहनि अपनाकर रहस्य त्रयार्थ के अनुसंधान एवं जप-स्वाध्याय में लगा रहता है। लक्ष्य प्राप्त करने की त्वरा उसे वरण किये रहती है, अस्तु वह स्वस्वरुप और परस्वरुप की अनुकुल स्थिति में रमण करने को आतुर होता है।

३- एकान्तिक वैष्णव :- स्वरूपज्ञ होकर स्वस्वरूप में स्थित रहता है, मंत्र द्वय के अनुसंधान में परमपद सदृश सुख का अनुभव करता है। भगवान के नाम-रूप-लीला-धाम के चिन्तन में उसे रस आने लगता है, अस्तु प्रभु के स्मरण में लगा रहता है, रागानुगा भक्ति उसका वरण कर लेती है।

४- परमैकान्तिक वैष्णव :- प्रपन्नतया आर्तिदशा को प्राप्त हो जाता है। प्रभु का विस्मरण क्षण मात्र होने से परम व्याकुलता का अनुभव करता है, प्रेम के सात्विक भाव उसके शरीर में उदय और अस्त होते रहते

हैं। प्रभु-प्राप्ति की अत्यंत त्वरा में देह-विसर्जन करना चाहता है, क्योंकि प्रियतम की प्राप्ति में प्रारब्ध (देह) को प्रतिबंधक समझता है। संसार का बीज नष्ट हो जाने पर जगत भगवतमय दृष्टिगोचर होने से वह वृक्षों से लिपट-लिपट कर रोने लगता है किन्तु प्रभु विरहाग्नि बढ़ती ही जाती है।

५- विष्णु से अभिन्न विशुद्ध वैष्णव :- विरह की दसों दशाओं में निमग्न रहकर प्रेम का साक्षात् विशुद्ध विग्रह हो जाता है। भाव-महाभाव-मोहन-मादन-उन्मादन की स्थितियाँ उसका वरण किये रहती हैं, वह कभी प्रभु के योग का और कभी वियोग का अनुभव तो करता है किन्तु प्राय: प्रेम-प्रेमी-प्रेमास्पद की त्रिपुटी को भंग किये रहता है, वह पराभक्ति सम्पन्न हो जाता है।

नोट :- बाह्यभ्यंतर, सात्विक, राजस, तामस तथा कायिक, वाचिक, मानसिक प्रपत्ति करने के प्रकार से वैष्णव शास्त्रों में वैष्णव के कई भेद कहे गये हैं।

---०---

१०१. वैष्णव में शास्त्रानुमोदित सदाचार

१- वैष्णव का शयन, जागरण, शौचादि क्रिया, स्नान क्रिया, सूर्योपस्थान, संध्या-तर्पण, स्वाध्याय-यज्ञादि क्रिया, भोजन-प्रसाद-सेवन, सम्मिलन, संभाषण, उठना बैठना, चलना, जमुहाना, हँसना, देना, लेना, सेवा-सत्कार इत्यादि शिष्टाचार शास्त्रानुकूल सबको प्रिय लगने वाला पाप रहित होता है।

२- वैष्णव सदाचार को आध्यात्मिकोन्नति रूपी नव मंजिले मकान में चढ़ने के लिए प्रथम सोपान मानता है।

३- शिष्टाचार से मन में पवित्रता का पोषण होता है, जिससे वैष्णव, भगवत मार्ग में आरूढ़ होकर इष्ट की प्राप्ति करने में समर्थ बनता है, अस्तु वैष्णव सदाचार से संयुक्त रहता है।

४- शिष्टाचार से भगवत कैंकर्य करने की पात्रता के दर्शन होते हैं, इसलिए सदाचार वैष्णवों से सेवित है।

५- सदाचार से लोक कल्याण होता है, वैष्णव के उन आचरणों को देख-देखकर साधारण जन अनाचार एवं दुराचार से बच जाते हैं।

१०२ . वैष्णव सबको सुखद व प्रियकर

१- वैष्णव, भगवान को प्राण प्रिय होता है क्योंकि वह उनकी अनुकूलता को अवधारण कर अनन्य प्रयोजन हो गया है।

२- वैष्णव देवताओं को बहुत प्रिय होता है, क्योंकि उसके सदुपदेश के द्वारा संसार के जन यज्ञादि धर्मों का अनुष्ठान करने लगते हैं, जिससे सुरगणों को परम तृप्ति होती है।

३- वैष्णव से पितृगण परम प्रसन्न होकर नृत्य करने लगते हैं क्योंकि निजकुल में उत्पन्न होने वाले वैष्णव से उनका उद्धार हो जाता है।

४- वैष्णव से वसुन्धरा भागयवती होकर परमानन्द का अनुभव करती है, क्योंकि उनके पदन्यास से पग-पग में तीर्थ हो जाते हैं। भगवान भी भक्त के पीछे पीछे चलकर तथा भक्तों के लिये अवतार धारण कर भू-भार हरण करते हैं।

५- वैष्णव से पशु-पक्षी, चेतन-जड़ सब प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि वह अहिंसक बनकर सब भूतों का हित चाहने वाला सुहृद है। उसके हृदय में उसका कोई शत्रु नहीं है, सबमें वह अपने भगवान का दर्शन करने वाला है।

---o---

१०३. वैष्णव धर्म की सनातनता

१- जब से सनातन विष्णु (व्यापक ब्रह्म) है, तब से वैष्णव-जगत का वैष्णव धर्म है। विष्णु सनातन और सच्चिदानन्द है, इसलिये वैष्णव धर्म भी सनातन और सच्चिदानंद है, क्योंकि धर्म धर्मी से पृथक तत्व नही होता।

२- जब से विष्णु का सनातन, सच्चिदानन्द वैष्णव धाम है, तब से सनातन सच्चिदानंद वैष्णव धर्म है क्योंकि धर्म धर्मी के अनुरूप होता है।

३- जब से विष्णु भगवान का सनातन और सच्चिदानन्द सगुण साकार स्वरूप है, तब से सच्चिदानंद सनातन वैष्णव धर्म है, क्योंकि धर्म धर्मी का आश्रय नहीं छोड़ता।

४- जब से विष्णु भगवान की सच्चिदानन्दमयी सनातनी लीला है तब से सच्चिदानंद सनातन वैष्णव धर्म है क्योंकि धर्म सर्वदा धर्मी के साथ रहता है।

५- जब से सच्चिदानंद सनातन भगवान का शेषभूत दास धर्म वाला जीव है, तब से उसके स्वरूपानुरूप-परम-पद-प्रबोधक एवं प्रदायक सनातन वैष्णव धर्म है, क्योंकि धर्मी के तत्व धर्म में विद्यमान रहते हैं।

नोट :- वैष्णव धर्म सनातन है, इसलिए यह अनन्त काल से चला आ रहा है, चल रहा है, भविष्य में भी चलता रहेगा। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास और स्मृति इसके साक्षी हैं। हाँ समय एवं भगवदिच्छा की प्रबलता से उनके लीला हेतु कभी ह्रस्वता को, कभी विस्तार को प्राप्त होता रहता है।

---०---

१०४. वैष्णव में अकार त्रय सम्पन्नता

१- वैष्णव के अहं के सर्वथा समाप्त होते ही अनन्य शेषत्व, विषय भोग में रुचि न रहते ही अनन्य भोगत्व और अपने तथा पर के बल का अभाव होते ही अनन्य रक्षकत्व स्वयं व सहज आ जाता है, अस्तु, भगवद्भक्त अकार त्रय की विभूति वाला बनकर स्वरूपानुकूल आचरण से भगवान के मुखोल्लास को विवर्धन करता है।

२- चेतन का सहज स्वरूप अकार त्रय के आकार वाला होता है अस्तु स्वरूपज्ञ वैष्णव स्वाभाविक ही अकार त्रय सम्पन्न होता है।

३- वैष्णव प्रभु के परमार्थ स्वरूप का दर्शन पाते ही अपने सहज स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, अस्तु वह त्रय अकार के आकार का हो जाता है।

४- सद्गुरु की कृपा से अकार त्रय के बोध होने पर ही प्रभु की अनुकूलता प्राप्त होगी, ऐसा दृढ़ निश्चयी वैष्णव सदाचार्य कि शुश्रूषा-परायणता से उनकी अनुकम्पा प्राप्त कर अकार त्रय से युक्त हो जाता है।

५- परम पुरुषार्थ के प्राप्ति की कामना जो आर्तित्व की आहों से परिमार्जित है, वैष्णव को अकार त्रय सम्पन्न कर देती है।

१०५. वैष्णव में अर्थ पंचक तत्वज्ञता

१- वैष्णव आचार्य मुख से सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास और स्मृति के सार सिद्धांत भूत अर्थ पंचक तत्व को श्रवण कर उसका विशेषज्ञ हो जाता है।

२- वैष्णव गुरु मुख से रहस्य त्रयार्थ को श्रवण करके अर्थ पंचक तत्व का ज्ञानी बन जाता है।

३- भगवान अहेतुक कृपा करके जब वैष्णव को बुद्धि योग प्रदान करते हैं, ठीक उसी समय वह अर्थ पंचक तत्व को भली-भाँति समझ जाता है।

४- संतों के सत्संग सेवन से सहज ही में वैष्णव के हृदय में अर्थ पंचक तत्व का विस्तृत बोध हो जाता है।

५- मूल मंत्र का अनवरत जप करते-करते जापक के हृदय में सारे तत्वों के ज्ञान का प्रकाश होता है, अस्तु वैष्णव से अर्थ पंचक तत्व का अर्थात् स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपाय स्वरूप, फलस्वरूप और विरोधी स्वरूप का ज्ञान अप्रकाशित नहीं रह सकता।

---०---

१०६. वैष्णव में तत्व त्रय का ज्ञान

१- सद्गुरु -सूर्य के उदय हो जाने पर शिष्य के अन्त:करण के अज्ञानांधकार की निवृत्ति नि:संदेह हो जाती है, अस्तु उसके सूक्ष्म बुद्धि के दर्पण में ईश्वर और जीव का स्वरुप चमकने लगता है। स्वस्वरुप और परस्वरुप के दर्शन की विरोधी माया जो भगवद्दर्शन के पहले अन्धकार में लीन कर रक्खी थी, उसका भी ज्ञान, अदर्शन और दर्शन के मध्यकाल में हो जाता है, इसलिये तीनों तत्वों का पूर्ण बोध वैष्णव के चित्त-भीति पर चित्रित हो जाता है।

२- भगवान अपने अनन्य शरणापन्न भक्त से छिपे नहीं रह सकते। वे अपने निजी जनों को पूर्णतया अपना बोध करा करके ही कृत कृत्य होते हैं, इसलिये वैष्णव तत्वत्रय का ज्ञानी हो जाता है।

३- तीनों तत्वों का बोध कराने वाले वेदों, शास्त्रों और पुराणों का अभ्यास भी वैष्णव को तत्व त्रय के स्वरूप को समझाने में सहायक होता है।

४- संतों, हरि-भक्तों और बहुश्रुतों का समागम, सेवन और अनुभव भी तत्व त्रय का ज्ञान कराने में समर्थ होता है।

५- मूल मंत्र के सादर निरंतर दीर्घकाल के जप से भी वैष्णव को तत्वत्रय का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।

---०---

१०७. वैष्णव में अनन्य प्रयोजनत्व

१- वैष्णव को भगवान और उनके शेषत्व के अतिरिक्त कोई प्रयोजन नहीं रहता। वे शेषत्व के बिना अपने देह, प्राण, अत्यधिक आनन्द और आत्मा तथा आत्म सम्बन्धी उभय विभूति, मान-प्रतिष्ठा इत्यादि की किंचित अभिलाषा नहीं करते। भगवत कैंकर्य ही उनका सर्वस्व है, जिसे त्यागकर अर्ध क्षण के लिये भी यदि चित्त कहीं चला जाय, तो वे अपने को नहीं सहते।

२- वैष्णव अकार त्रय विभूति से संयुक्त होते हैं, इसलिये स्वरूपानुकूल उनका अनन्य प्रयोजनत्व स्वाभाविक है।

३- वैष्णव अखंड भजन करते-करते भजनीय भगवान में सर्वभावेन देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा को विलीन करके तदाकार बन जाते हैं। उनके चित्त और बुद्धि में अन्य का अस्तित्व ही नहीं रहता, इसीलिये वे अनन्य प्रयोजन वाले होते हैं।

४- प्रेमातिशयता के कारण वैष्णवों का चित्त अपने प्रेमास्पद प्रभु का चिन्तन प्रत्येक परिस्थिति में प्रत्येक समय किया करता है। क्षणभर के अन्य चिंतन में वे असहिष्णुता का अनुभव करते हैं, अतएव मन और बुद्धि में अन्य अस्तित्व के आवरण का सर्वथा अभाव हो जाता है, अस्तु प्रपन्न वैष्णव सहज ही अनन्य प्रयोजन वाले होते हैं।

५- वैष्णवों को जब अपने सहज स्वरूप का परिज्ञान सद्गुरु के द्वारा हो जाता है, तो वे स्वस्वरूप के विरोधी अन्य प्रयोजन को कभी किंचित रूप से स्मरण नहीं करते, क्योंकि उनकी स्थिति अपने सहज स्वरूप में स्थाई हो गई है।

१०८. वैष्णव में उपाय विषयक निष्ठा

१- वैष्णव जन भगवत् प्राप्ति का उपाय, भगवान की अहैतुकी कृपा को ही स्वीकार करते हैं। प्रभु को उपायतया स्वीकार करना शास्त्र, भगवान और सदाचार्यानुमोदित है, अस्तु वे प्रभु को उपाय रूप में वरण करने के नैष्ठिक होते हैं।

२- वैष्णव की निष्ठा उपाय विषय में श्री विदेहराज नन्दिनीजू और द्रुपद-कुमारी द्रौपदीजू के समान होती है, जैसे श्री जनक राज तनया श्री सीता जू ने अपनी रक्षा के लिये अपनी शक्ति सामर्थ्य का (जिससे रावणादि राक्षस भस्म किये जा सकते थे) परित्याग कर केवल श्री रघुनन्दनजू के कृपा का ही अवलम्बन ग्रहण किया था, इसी प्रकार द्रौपदीजी ने अपनी लज्जा का परित्याग करके सम्पुट पाणि होकर अपनी रक्षा के लिये भगवान द्वारकाधीश से प्रार्थना की थी।

३- वैष्णव भगवती भास्वती कृपा का समीक्षण प्रत्येक परिस्थिति में प्रत्येक समय करते हुए, प्रभु प्रेम तथा प्रभु और प्रभु कैंकर्य प्राप्ति के लिये अहर्निशि कृपा देवी के पंथ में खड़े होकर कृपा की प्रतीक्षा कर-करके कालक्षेप किया करते हैं।

४- वैष्णव प्रभु की कृपा-सुधा से ही अपनी तुष्टि और पुष्टि समझते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वेद विहित साधनों को उपायतया स्वीकार नहीं करते, शरणागति मंत्र इसका साक्षात प्रमाण है।

५- रहस्यत्रयी विद्या की प्राप्ति सद्गुरु से कर लेने पर वैष्णव अपनी रक्षा के लिये तृण तोड़ने के बराबर भी उपाय नहीं करते। उनका दृढ़ निश्चय होता है, कि इष्ट की प्राप्ति व अनिष्ट की निवृत्ति प्रभु के कृपा से ही संभव और शक्य है, अपने या अन्य के बल से नहीं।

---०---

१०९. वैष्णव में उपेय विषयिनी निष्ठा

१- वैष्णव भगवान और उनके कैंकर्य की प्राप्ति को परम पुरुषार्थ समझते हैं, जो प्रेमातिशयता से तत् सुख सुखी की भावना से भावित होकर किया जाता है। इस सहज सेवा की अप्राप्ति में वे अपनी देह और आत्मा को यथा स्थिति रखने में असहिष्णु होते हैं।

२- वैष्णव की उपेय निष्ठा भी लक्ष्मण कुमार, श्री जटायु और चिन्तयन्ती की तरह होती है। श्री लखन लाल जी ने श्री राम जी के कैंकर्य बिना मुहूर्त भी जीना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने प्रभु के जागते और सोते समय के सर्व प्रकार के कैंकर्य करने में ही सुखानुभूति प्रगट की है। श्री जटायु जी श्री राम जी के कैंकर्य-विमुख न हुये वरन् अपने प्राणों का बलिदान कर दिये। भगवान श्री कृष्ण के दर्शन-वियोग को न सहते हुये चिन्तयन्ती जी के आकुल-व्याकुल प्राण अपने आप प्रयाण कर गये।

३- वैष्णव प्रभु के सकल विधि कैंकर्य करने में निपुण होते हैं, यही उनका परम पद और पुरुषार्थ है। कैंकर्य के बिना उनके सहज स्वरूप की हानि होती है इसलिये वे कैंकर्य विहीन एक क्षण भी नहीं रह सकते।

४- प्रभु और उनके कैंकर्य करने के आस्वादानुभवी वैष्णव सेवा सुख के बिना उसी प्रकार अपनी आत्मा का उत्सर्ग कर देते हैं, जैसे जल के बिना मीन।

५- प्रभु कृपा से प्रभु कैंकर्य की अनुरक्ति पूर्ण प्राप्ति होती है, अस्तु उसके अभाव में वैष्णव का हृदय अपने अपराधों का अनुसंधान कर संतप्त हो उठता है। वे अपने को कृपा का अनधिकारी समझते हुए, प्रभु-कैंकर्य के वियोग में अपने प्राणों का विसर्जन कर देते हैं।

---०---

११०. वैष्णव में स्वस्वरूप निष्ठा

१- वैष्णव मूल मंत्रानुसार निश्चय किये गये स्वस्वरूप में सदा प्रतिष्ठित रहते हैं, क्योंकि वेद-पठित उक्त मंत्र चेतन के सहज स्वरूप का समर्थन करता है, जिसके प्रमाण में स्वयं भगवान का "चरम श्लोक" और गुरुदेव के सार-सिद्धान्त गर्भित 'मंत्र-द्वय' अर्थात् 'मंत्र रत्न' वाक्य है।

२- यह चेतन भगवान का सहज शेषभूत दास है, जिसकी सार्थकता भगवत-भोगोपयोग में है, सदा-सदा प्रभु की परतन्त्रता में रहने वाला सहज उनका रक्ष्य पदार्थ है, अस्तु अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व और अनन्य रक्षकत्व भाव से भावित वैष्णव अपने सहज स्वरूप में ही स्थित रहते हैं।

३- स्वरूपज्ञ वैष्णव "मै चेतन हूँ और यह जड़-प्रकृति, मुझ से सर्वथा हेय है" ऐसा स्वरूपाभिमान नहीं करते। वे जड़-चेतनात्मक जगत को प्रभु का शरीर समझते हैं, अस्तु अपना स्वरूप भगवत स्वरूप के भीतर मानते हैं, अर्थात अपना अलग अस्तित्व नहीं मानते।

४- स्वरूपज्ञ वैष्णव, देहाभिमान, स्वरूपाभिमान, उपायाभिमान, उपेयाभिमान, कर्तृत्वाभिमान, कारयितृत्वाभिमान, ज्ञातृत्वाभिमान और भोक्तृत्वाभिमान से रहित जड़वत व्यवहार दशा तथा अव्यवहार दशा में बने रहते हैं।

५-वैष्णव अहंकार व ममकार से विहीन होकर अंतरमुखी वृत्ति द्वारा आत्मस्थ होकर बहिर्मुख नहीं होते सदा सच्चिदानन्दमय बने रहते हैं।

---०---

१११. वैष्णव में पर–स्वरूप निष्ठा

१-भगवत स्वरूप ही परस्वरूप है। वेद-वर्णित बीज मंत्र भगवान को सर्वशेषी, सर्वभोक्ता और सर्वलोक शारण्य बतलाया है। अस्तु अपने आचार्य से इस मूल मंत्र को ग्रहण करके गुरु-वचनों में प्रीति-प्रतीति प्रसव करने वाली बुद्धि के वैष्णव का हृदय स्वाभाविक प्रभु को अपना सहज शेषी, भोक्ता और रक्षक स्वीकार कर लेता है।

२- प्रभु की प्रपत्ति स्वीकार करते ही वैष्णव शाश्वत परमानन्द का आस्वाद लेने लगता है, इसलिये उसका मन भगवन्निष्ठा से संयुक्त हो जाता है। करोड़ो विघ्नों के उपस्थित होने पर भी वह नैसर्गिक निष्ठा से पृथक नहीं होता।

३- भगवान के अनंत सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, सौष्ठव सौगन्ध और लावण्य लालित्यादि देह-संपत्तियों का उनके सच्चिदानन्दमय विग्रह के साथ में सदा एक रस नित नव-नव विवर्धमान होकर रहना, सद्गुरु एवं प्रेमी संतों से सुनते ही वैष्णव का चित्त सहज ही चितचोर से चुरा लिया जाता है, अस्तु वह पर-स्वरूप में निष्ठावान हो जाता है।

४- भगवान की भगवत्ता और उनके सौशील्य, सौलभ्य और वात्सल्यादि दिव्यातिदिव्य अनंत गुणों का किंचित अनुभव करते ही

वैष्णव का मन भाव विभोर होकर पर-स्वरूप में सहज ही निष्ठा करने वाला हो जाता है।

५- भगवान को सर्व समर्थ, काल, कर्म, स्वभाव, गुण- भक्षक, महान से महान निरतिशय समझकर एवं उनके जन्म कर्म की अमृतमयी, मनमोहनी, सुख स्वरूपिणी लीला को श्रवण कर वैष्णव सहज ही में उनमें अनुरक्त होकर पुन: अपने चित्त को अन्यत्र ले जाने में अशक्य होता है, अस्तु भगवद्भक्त स्वाभाविक ही भगवन्निष्ठा वाला होता है।

---o---

११२. वैष्णव में विरोधी स्वरूप का सर्वथा अभाव

१- वैष्णव जब मायापति भगवान की अनुकूलता अवधार्य औदार्यादरत्वता के साथ कैंकर्य परायण हो गया तो उसमें प्रतिकूलता अर्थात् विरोधी स्वरूप का निरोध हो जाना स्वाभाविक है।

२- वैष्णव के अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश पंच-क्लेश जिस समय क्षीण हो जाते हैं, उसी समय वह अपने सहज स्वरूप में स्थित हो जाता है। ममकारादि विरोधी वर्ग के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता।

३- सत्यसंध-शरणागत वत्सल भगवान स्वयं शरणागत चेतन के स्वरूप की रक्षा करते हुए उसके विरोधी स्वरूप का सर्वथा संहार कर देते हैं, अस्तु वैष्णव सहज ही विरोधिनी माया से ठगा नहीं जाता।

४- वैष्णव को जब सद्गुरु के द्वारा अर्थ पंचक तत्व का ज्ञान हो जाता है, तो वह 'मम' को साक्षात मृत्यु मानता है, अस्तु स्वस्वरूप विरोधी, अहंकार, ममकार का नाम मात्र स्मरण नहीं करता।

५- वैष्णव को जब अहंकार, ममकार, असत, आगन्तुक, दुखदाई एवं परमार्थ वस्तु विशेष से वंचित करने वाले प्रतीत होने लगते हैं, तो प्रभु कृपा का सहारा लेकर वह अपना पिण्ड इनसे छुड़ा लेता है, अर्थात् विरोधी वर्ग का निरोध हो जाता है।

---o---

११३. वैष्णव में विशुद्ध प्रपत्ति का विमर्श

१- भगवत-प्रवृत्ति-विरोधनी स्वप्रवृत्ति की निवृत्ति प्रवृत्ति ही प्रपत्ति के नाम से पुकारी जाती है अर्थात् निर्पेक्षोपाय भगवान चेतनों के उद्धार के लिये स्वयं कटिबद्ध होकर प्रयत्नशील हैं, किन्तु उनके हाथ को दूर हटाकर अपने बल से भवसागर तैरने को तैयार चेतन की प्रवृत्ति, प्रभु प्रवृत्ति की विरोधिनी है, अस्तु इस विपरीत स्वप्रवृत्ति से निवृत्त हो जाने की (अपने रक्षा का भार भगवान पर छोड़ देना) प्रवृत्ति ही प्रपत्ति है।

२- प्रपत्ति में उपाय बुद्धि गौण और औपचारिक है, यह केवल चेतन के अनुरूप अधिकार को व्यक्त करने वाली है, इसमें उपाय स्वयं भगवान हैं।

३- प्रपत्ति को उपायतया ग्रहण करने से फल समय, प्रभु की अपेक्षा होने के कारण, परतंत्र मानना पड़ेगा, अस्तु प्रपत्ति को परिशुद्ध कर स्वस्वरूपानुरूप भगवान को उपाय मानने से प्रपत्ति स्वतंत्र बनी रहती है, तभी इसको सिद्धोपाय के नाम से पुकारा जाता है अर्थात् अधिकारी को देखकर ही प्रभु अपने कृपा का पात्र बनाते हैं। मैंने शरणागति रूप उपाय किया है, इसलिये भगवत कृपा का पात्र बना, ऐसा अनुसंधान गलत, अन्योपाय के सदृश अहंकार से युक्त है।

४- प्रपत्ति को उपाय क्यों कहा गया, इस प्रश्न का उत्तर यह है, कि रसोई घर में भोजन करते समय पहले का वेष ठीक और भोग्य है, परन्तु शयन कक्ष में भोगानुभव करते समय पहले का वेष त्याग देना चाहिए, अर्थात् वरण काल (आत्म समर्पण काल) में ग्रहीता के हाथ में जाने के लिये आत्म निवेदन उपाय हुआ, किन्तु कैंकर्य काल में वह स्वरूपानुरूप सिद्ध होता है। भोगानुभव समय में पत्नी के आत्म निवेदन को उपाय नहीं कह सकते, क्योंकि उसका प्रथम समर्पण (पाणि ग्रहण) रूप उपाय इसी पति रसानुभूति के लिये हुआ था, अस्तु आत्म समर्पण स्वरूपानुरूप है।

५- कर्म, ज्ञान, उपासना और अष्टाङ्ग योग के साधन में कुशल समर्थ होकर भी प्रपत्ति करना चेतन के स्वरूपानुकूल है अन्याश्रयों और अन्योपायों का परित्याग ही तो प्रपत्ति है। इस त्याग के उत्पन्न होते ही

परमात्मा रक्षक बनकर जीव के समस्त पापों और शोकों का सर्वनाश करके अभय पद प्रदान करता है।

---०---

११४. वैष्णव में भगवन्नाम निष्ठा

१- वैष्णव सद्गुरु से प्राप्त प्रभु-नाम को सतत स्मरण कर मन और वाणी का विषय बना लेता है, अर्थात् हरि नाम ही वाणी का आवश्यक आहार बन जाता है।

२- भगवान का नाम स्मरण करने में सुलभ और सब प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाला अचिन्त्य शक्ति से संयुक्त है, ऐसी प्रतीति होने पर नामानुरागी वैष्णव की नाम निष्ठा स्वाभाविक ही हो जाती है।

३- जब श्री भगवन्नाम का अभ्यास करते-करते अपने आप नामोच्चारण होने लगता है, तब नाम जापक वैष्णव कृतकृत्य हो जाता है, उसकी नाम निष्ठा लोगों को आश्चर्यान्वित कर देने वाली हो जाती है।

४- नैष्ठिक नामानुरागी जापक के रोम-रोम से श्री हरिनाम की झंकार, झंकरित होकर देश, काल, परिस्थिति और पदार्थ को पवित्र करने लगती है। अधिकारी सज्जन सुन-सुनकर वैष्णव भक्त को तीर्थीभूत समझते हुये स्वयं कृतार्थ हो जाते हैं।

५- श्री भगवत कृपा पात्राधिकारी सादर सस्नेह, पूर्ण आर्तियुक्त नाम जपने वाले वैष्णव के सर्वाङ्ग में श्री हरि नाम अङ्कित हो जाता है, उसे दर्शन कर महा-पातकी भी पवित्र को पवित्र करने वाले बन जाते हैं। धन्य है उसकी नाम निष्ठा को............।

---०---

११५. वैष्णव में भगवद्रूप निष्ठा

१- बुद्धि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने पर जब परमात्म स्वरूप बुद्धि में चमकने लगता है, तब वैष्णव भगवान के परावर स्वरूप का एक बार दर्शन प्राप्त कर पुन: अदर्शन को नहीं प्राप्त होता, यही उसके निष्ठा का प्रमाण है, कि सारा का सारा दृष्य अदृष्य के उदर में संप्रविष्ट होकर कभी दृष्टिगोचर नहीं होता।